NEHRU
BAL PUSTAKALAYA

वीरों की कहानियाँ

राजेन्द्र अवस्थी

ISBN 978-81-237-0367-1

पहला संस्करण : 1975

पच्चीसवीं आवृत्ति : 2009 *(शक 1931)*

© राजेन्द्र अवस्थी, 1972

Stories of Valour *(Hindi)*

रु. 16.00

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया
नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज-II
वसंत कुंज, नई दिल्ली-110 070 द्वारा प्रकाशित

नेहरू बाल पुस्तकालय

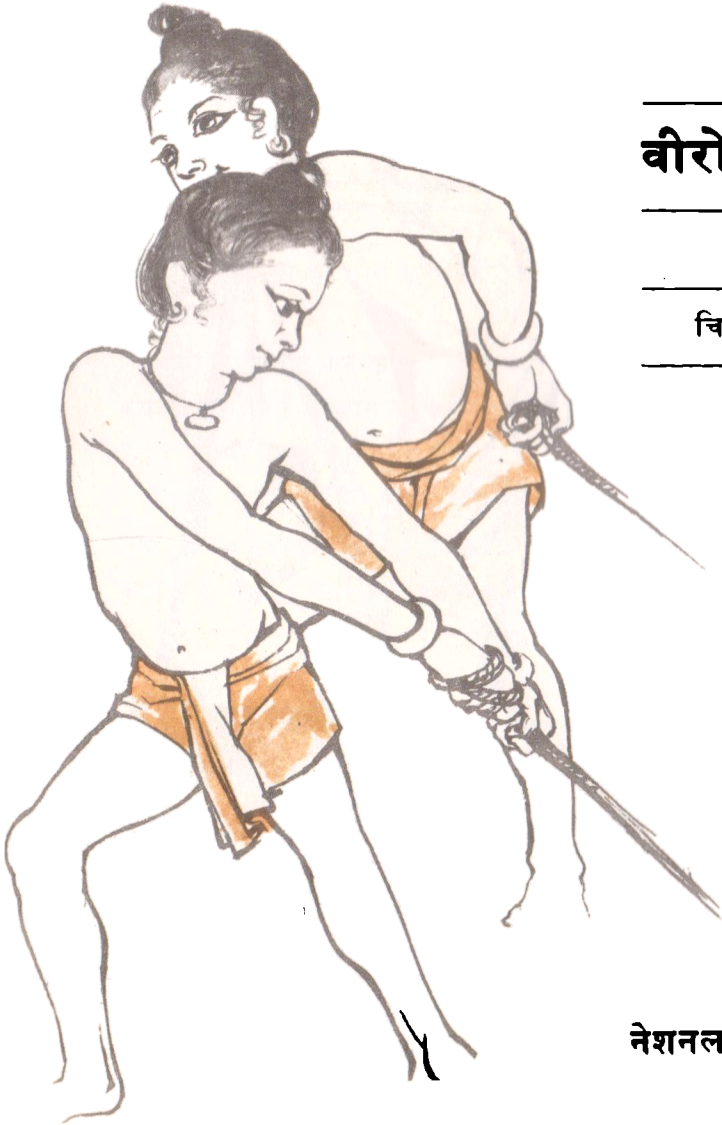

वीरों की कहानियाँ

राजेंद्र अवस्थी

चित्रकार : शरदिंदु सेन राय

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

तीर्थ-यात्री

रात को श्रवण कुमार ने अपने अंधे माता-पिता को भोजन कराया, फिर बड़े जतन से उनके बिस्तर बिछाये। जब दोनों लेट गये तो श्रवण अपने पिता के पैर दबाने लगा। यह उसका नित्य का नियम था। यों ही बातचीत में श्रवण ने कहा, "आज दक्षिण से कुछ यात्री यहाँ आये थे, पिता जी। पुण्यधामों की यात्रा पर निकले हैं। आज हमारे गाँव से गुजरे थे। कितने सुंदर कीर्तन गा रहे थे। गाते-गाते जैसे उन्हें तन-बदन की सुधि ही नहीं रहती थी। कुछ यात्री तो लँगड़े-लूले थे।"

बूढ़े ने ठंडी साँस भर कर कहा, "बड़े भाग्यशाली हैं बेटा वे लोग। हमारी भी बड़ी लालसा थी तीर्थ करने की। लेकिन भगवान ने आँखों से ही मोहताज कर दिया।"

बूढ़ी ने झिड़क कर कहा, "ऐसा क्यों कहते हो? हमारा बेटा जो है। वही हमारी आँखें है। भगवान को क्यों दोष देते हो? अपने भाग्य को सराहो जो ऐसा सपूत जनमा हमारी कोख से।"

श्रवण उस समय तो कुछ न बोला, लेकिन पिता की बात उसके मन में लग गयी। उसने उसी समय मन में ठान लिया कि वह अपने माता-पिता को तीर्थ-यात्रा करा कर रहेगा। यह उसका धर्म है। लेकिन उसने अपने मन की बात मन में ही रखी। अपनी पत्नी से भी नहीं कही। वह जानता था कि उसको ज़रा भी अच्छा नहीं लगेगा।

जैसी कि उन दिनों की रीति थी, श्रवण का विवाह बचपन में ही हो गया था। वह पत्नी से कहा करता था कि अगर मुझे खुश रखना हती हो तो तन-मन से मेरे माँ-बाप की सेवा करो। श्रवण के सामने तो उसकी पत्नी सास-ससुर की खूब सेवा करती, लेकिन उसके पीठ पीछे खूब जली-कटी सुनाती। भरपेट भोजन भी न देती। परंतु बूढ़े-बूढ़ी ने श्रवण से कभी कोई शिकायत नहीं की, बल्कि श्रवण से उसकी सराहना ही किया करते।

श्रवण के सिर पर तीर्थ-यात्रा की धुन सवार हो गयी थी। वह सोचता कि जिस दिन वह यात्रा की तैयारियाँ करके माता-पिता को अपना इरादा बतायेगा, वह कितने प्रसन्न होंगे। शायद जाने से इन्कार भी कर दें क्योंकि वे यह नहीं

चाहेंगे कि उनके कारण श्रवण को कष्ट हो। लेकिन वह उनको मना लेगा। श्रवण की भूख और नींद गायब हो गयी। हर क्षण वह तीर्थ-यात्रा के बारे में ही सोचता रहता। उसे बस यही चिंता थी कि राह में उसके माता-पिता को किसी तरह का कष्ट न हो। बहुत सोचने-विचारने के बाद उसको रास्ता सूझा।

दूसरे ही दिन श्रवण सारा काम-काज निपटा कर बढ़ई के पास गया जो पास ही रहता था। श्रवण को देख कर बढ़ई बहुत प्रसन्न हुआ। उसकी मातृ-पितृ-भक्ति के कारण श्रवण को गाँव के सभी लोग बहुत प्यार करते थे।

बढ़ई ने पूछा, "कहो बेटा, कैसे आये ?"

श्रवण ने कहा, "काका, मेरे लिए एक काँवर बना दीजिए।"

"काँवर ?" बढ़ई ने आश्चर्य से पूछा, "काँवर का क्या करोगे ?"

श्रवण ने कहा, "मैं अपने माता-पिता को उसमें बिठाकर तीर्थ-यात्रा के लिए ले जाऊँगा। तीर्थ-यात्रा करने की बड़ी लालसा है उनको। लेकिन बेचारे आँखों से जो मजबूर हैं। तो कब तक बना देंगे, काका ?"

बढ़ई हैरान होकर श्रवण की ओर ताक रहा था। बोला, "मेरी बात सुनो, बेटा। तुम अभी छोटे हो। तीर्थों का मार्ग बड़ा दुर्गम है, विपदाओं से भरा है। रास्ते में पहाड़ हैं, नदियाँ हैं, जंगल हैं। भयानक पशु हैं। विषैले साँप हैं। तुम

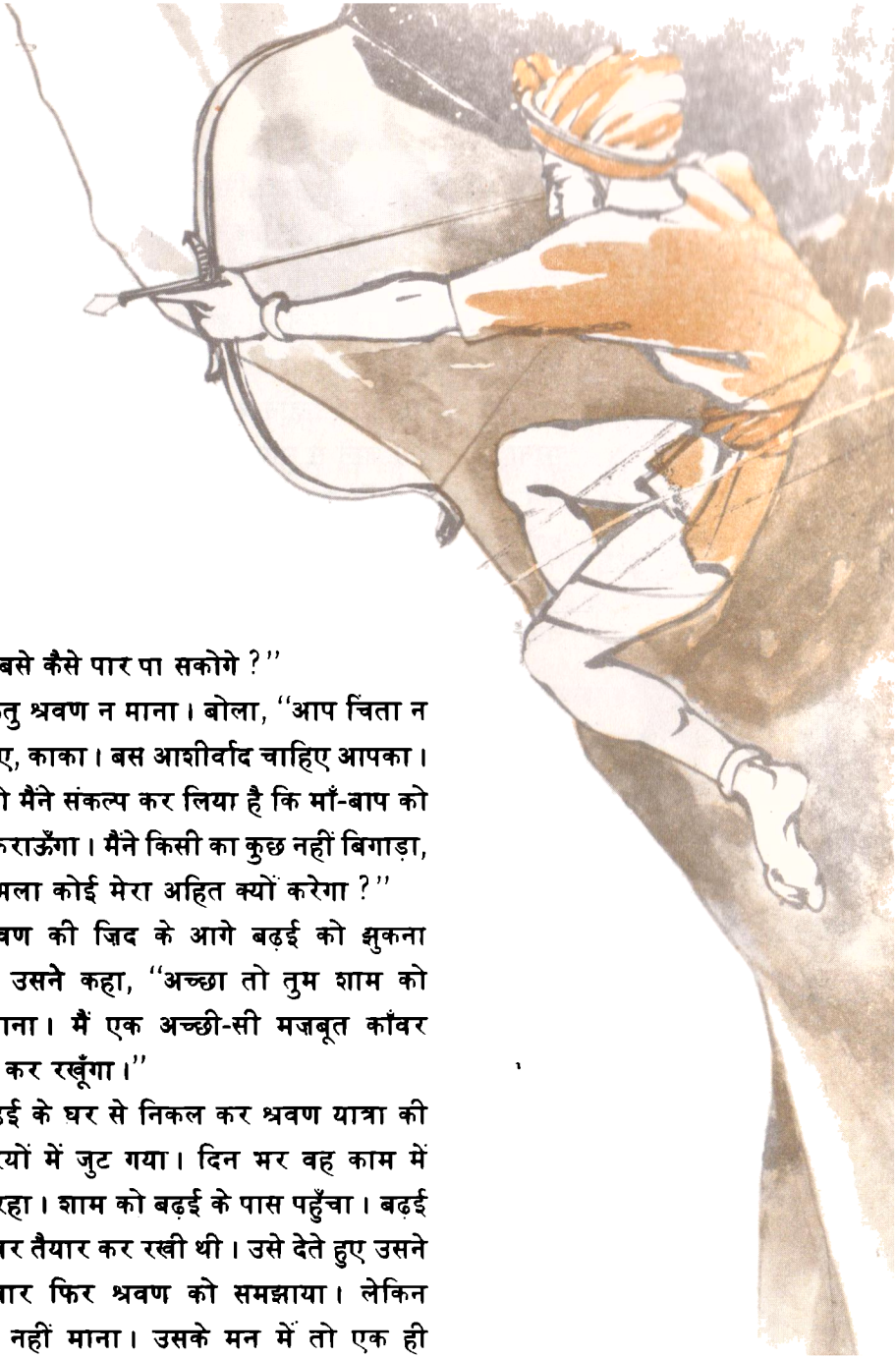

इन सबसे कैसे पार पा सकोगे ?"

किंतु श्रवण न माना। बोला, "आप चिंता न कीजिए, काका। बस आशीर्वाद चाहिए आपका। अब तो मैंने संकल्प कर लिया है कि माँ-बाप को तीर्थ कराऊँगा। मैंने किसी का कुछ नहीं बिगाड़ा, फिर भला कोई मेरा अहित क्यों करेगा ?"

श्रवण की ज़िद के आगे बढ़ई को झुकना पड़ा। उसने कहा, "अच्छा तो तुम शाम को आ जाना। मैं एक अच्छी-सी मज़बूत काँवर तैयार कर रखूँगा।"

बढ़ई के घर से निकल कर श्रवण यात्रा की तैयारियों में जुट गया। दिन भर वह काम में लगा रहा। शाम को बढ़ई के पास पहुँचा। बढ़ई ने काँवर तैयार कर रखी थी। उसे देते हुए उसने एक बार फिर श्रवण को समझाया। लेकिन श्रवण नहीं माना। उसके मन में तो एक ही

लगन थी कि कैसे वह माता-पिता को तीर्थ-यात्रा कराये, कैसे उनकी मनोकामना पूरी करे। बढ़ई काका को प्रणाम करके उसने काँवर उठायी और चल दिया।

घर जाकर उसने पहले तो अपनी पत्नी को बताया कि वह तड़के सबेरे ही यात्रा पर निकलने वाला है। फिर उसने बूढ़े-बूढ़ी को बताया। उन्होंने बहुत मना किया। श्रवण नहीं माना तो उन्होंने जाने से साफ़ इन्कार कर दिया। भला वह कैसे सह सकते थे कि उनका प्यारा बेटा उनके कारण इतना कष्ट उठाये। लेकिन श्रवण ने उन्हें किसी तरह मना लिया। उसने उन्हें आश्वासन दिलाते हुए कहा, "रास्ते में कोई तकलीफ न होगी। मैंने सारा इंतजाम कर लिया है।"

दूसरे दिन तड़के ही वह उठा। अपने माता-पिता को तैयार किया। उन्हें काँवर में बिठाया और फिर काँवर को कंधे पर उठा कर चल पड़ा। सारा गाँव उस अद्भुत दृश्य को देखने के लिए उमड़ पड़ा। उनके रोएँ-रोएँ से श्रवण के लिए आशीर्वाद निकल रहा था।

धीरे-धीरे दिन चढ़ आया। सड़कों पर रथ दौड़ने लगे। चारों ओर चहल-पहल हो गयी। इन सबसे बेखबर श्रवण अपनी धुन में आगे बढ़ता चला जा रहा था। राह में जो भी उसे देखता, बस देखता रह जाता। एक सुकुमार बालक, कंधे पर काँवर और उसमें बैठे अंधे माता-पिता। जो भी यह दृश्य देखता, उसकी आँखें भर आतीं।

दिन बीते, सप्ताह बीते, महीने बीत गये। श्रवण कुमार रात में थकान मिटाता और सारा दिन सफर करता। चलते-चलते वह एक घनघोर जंगल में पहुँच गया। जंगल में भी वह नहीं घबराया। बल्कि उसे वहाँ बड़ा अच्छा लगा। कभी पक्षियों का कलरव सुनायी देता तो कभी सिंह की भयानक गर्जना। तब उसके सामने से भयभीत हिरन चौकड़ी भरते

निकल जाते। खरगोशों के दल एक-दूसरे के पीछे भागते नजर आते। सिंह क्या गरजता जैसे सारे जंगल में भूकंप आ जाता। किंतु सिंह की गर्जना भी श्रवण को उसके पथ से डिगा नहीं पायी। वह उसी तरह काँवर उठाये चलता रहा।

रात हो गयी थी। जंगल में शांति थी। दिन भर के थके-माँदे सारे पशु-पक्षी अपने-अपने बसेरों में आराम कर रहे थे। लेकिन श्रवण की आँखों में नींद नही थी। वह सोच में डूबा हुआ पेड़ के तने के सहारे लेटा था। पास ही काँवर रखी थी। उसके पास ही उसके माता-पिता सो रहे थे। सहसा पिता उठ बैठे और श्रवण को पुकार कर पानी माँगा।

श्रवण ने फौरन उठ कर पानी का बर्तन उठाया। पर उसमें एक बूँद भी पानी नहीं था। उसने कहा, "पिता जी, इसमें तो पानी नहीं है। मैं अभी लेकर आता हूँ। आसपास जरूर कोई तलैया या सोता होगा।"

पिता ने लाख मना किया कि अँधेरे में मत जाओ, लेकिन भला यह कैसे हो सकता था कि श्रवण पिता को प्यासा रहने दे। बर्तन उठा कर वह जल की खोज में निकल पड़ा।

थोड़ी ही देर में ठंडी हवा के झोंके आने लगे तो उसने अनुमान लगाया कि उस ओर कोई सरोवर या नदी अवश्य है।

कुछ आगे चलते ही श्रवण को नदी की कलकल सुनायी पड़ी। वह तेजी से

उसी ओर दौड़ पड़ा। नदी के पास पहुँच कर वह बर्तन मे पानी भरने लगा। खाली बर्तन में पानी भरने लगा तो गड़गड़ की आवाज़ हुई। इतने में ही न जाने कहाँ से सनसनाता हुआ एक तीर आया और श्रवण के सीने में जा घुसा। उसकी करुण चीत्कार से सारा जंगल गूँज उठा पेड़ों पर सोये पक्षी पंख फड़फड़ा कर उठ बैठे। उसी चीत्कार को राजा दशरथ ने भी सुना जिन्होंने तीर छोड़ा था और जो इस समय पेड़ पर चढ़े बैठे थे। वह हाथियों का शिकार करने आये थे। खाली बर्तन में पानी भरने की ध्वनि सुन कर उन्होंने सोचा कि कोई हाथी पानी पीने नदी पर आया है। उन्होंने आव देखा न ताव, तीर छोड़ दिया। इस चीत्कार को सुन कर राजा दशरथ स्तब्ध रह गये। यह तो किसी आदमी की चीत्कार थी! राजा पेड़ पर से कूद पड़े और उस दिशा की ओर भागे जिधर से आवाज़ आयी थी। वहाँ पहुँच कर उन्होंने देखा कि धरती पर एक सुंदर किशोर पड़ा तड़प रहा है। तीर उसकी छाती में बिंधा है। जिसको उन्होंने हाथी समझा था वह आदमी निकला, और वह भी एक सुकुमार किशोर। उनके पछतावे की सीमा न रही। उन्हें चारों ओर धरती घूमती-सी जान पड़ी।

श्रवण अपने माता-पिता को पुकार रहा था। दशरथ श्रवण के पास घुटनों के बल बैठ गये। उसका सिर अपनी गोद में ले लिया, फिर बड़ी सावधानी से उसकी छाती में लगा तीर निकाला। तीर के निकलते ही खून का फौवारा-सा छूट पड़ा। दशरथ ने आँखों में आँसू भर कर कहा, "किशोर, अनजाने में मुझसे बड़ा पाप हो गया है। तुम मुझे क्षमा करो। मैंने तो समझा था कि कोई हाथी नदी में पानी पीने आया है।"

श्रवण ने बड़े कष्ट से कहा, "आप राजा जान पड़ते हैं। मेरा बस एक काम कर दें। इसी वन में मेरे माता-पिता उधर बैठे हैं। मैं उनके लिए पानी लेने आया था। वे प्यास से व्याकुल होंगे। आप जाकर यह पानी उन्हें पिला दें।" धीरे-धीरे राजा ने श्रवण से उसकी सारी कहानी सुन ली। "ऐसे विनयी, और माता-पिता के भक्त किशोर की मृत्यु मेरे ही हाथों होनी थी?" यह कह-कह कर राजा दशरथ रो पड़े और अपने को धिक्कारने लगे।

श्रवण ने कहा, "अब आप देर न कीजिए राजन्, जल्दी से पानी लेकर जाइए।"

यह कहते-कहते श्रवण ने दम तोड़ दिया।

दशरथ ने श्रवण का शव कंधे पर उठाया। एक हाथ में पानी का बर्तन थामे वह श्रवण के माता-पिता को ढूँढ़ने चल पड़े।

दूर से उन्होंने देखा कि एक पेड़ के नीचे कोई बैठा है। वह उधर ही चल पड़े। उनके पैरों की आहट सुन कर श्रवण के माता-पिता एक साथ बोल उठे, "आ गये, बेटा ? बड़ी देर लगा दी। हम तो घबरा रहे थे कि कहीं तुम्हें कुछ हो न गया हो। जल्दी से पानी पिला दो, बेटा। अब तो प्यास सही नहीं जाती।"

दशरथ का दिल बुरी तरह धड़क रहा था। उनका सिर शर्म से झुका जाता था। कैसे उनको बेटे की मृत्यु का समाचार सुनाया जाय ? काँपते हाथों से उन्होंने पानी का बर्तन श्रवण के पिता के हाथों में थमाया। बर्तन हाथ में लेते हुए बूढ़े ने कहा, "बोलते क्यों नहीं बेटा ? तुम्हें क्या हो गया ?" फिर अचानक शंकित स्वर में उसने पूछा, "तुम श्रवण ही हो न ?"

अब बूढ़ी ने भी कहा, "हाँ बेटा, बोलते क्यों नहीं ? तुम तो दूर से ही माँ-माँ पुकारते आते थे। आज क्या हो गया तुम्हें ? तुम बोलोगे नहीं तो हम पानी भी नहीं पियेंगे।"

अब दशरथ क्या करते ? उन्होंने पश्चात्ताप से भर कर कहा, "मैं भी तुम्हारा पुत्र हूँ, माँ। दशरथ नाम है मेरा। तुम्हारा श्रवण . . ." कहते-कहते राजा का स्वर काँप उठा।

बूढ़ी चीख उठी, "बोलो, बोलो, हमारे श्रवण को क्या हुआ ?"

राजा ने हिम्मत की और बड़ी मुश्किल से श्रवण की मृत्यु का समाचार कह सुनाया।

सुनते ही बूढ़ा-बूढ़ी चीख उठे। उनके विलाप से सारा जंगल गूँज उठा। अयोध्या के प्रतापी राजा दशरथ अपराधी की तरह सिर झुकाये खड़े थे। उन्हें समझ में नहीं आया कि क्या करें, किस प्रकार उन्हें ढाढ़स बँधायें। उन्होंने रुँधे हुए स्वर में कहा, "माँ, तुम दोनों मेरे साथ चलो। मैं तुम्हारी सेवा करूँगा। आज से मैं तुम्हारा श्रवण हूँ।" लेकिन वे न माने। उन्होंने कहा, "श्रवण के बिना हमारा जीवन बेकार है। राजा, तुम्हें हमारे कष्ट का पता तब चलेगा जब तुम भी हमारी

तरह अपने पुत्र के वियोग में तड़पोगे।''

दशरथ यह सुन कर मन ही मन काँप उठे।

रोते-कलपते बूढ़े-बुढ़िया के प्राण निकल गये।

राजा दशरथ ने अपने हाथों उनका दाह-संस्कार किया और दुखी मन से राजधानी लौटे। न उनके मन में शांति थी और न आँखों में नींद।

वर्षों बाद जब उनके पुत्र राम बनवास को चल दिये तो शोक से व्याकुल राजा दशरथ को श्रवण के माँ-बाप की बात बार-बार याद आने लगी ''राजन्, तुम्हें हमारे कष्ट का पता तब चलेगा जब तुम अपने पुत्र के वियोग में तड़पोगे।''

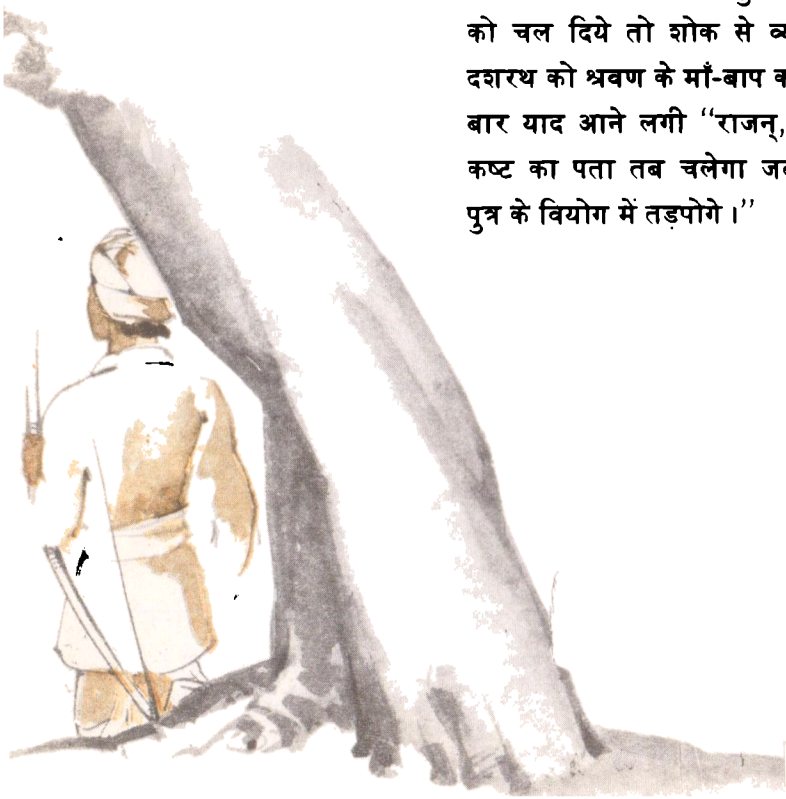

गुरु-दक्षिणा

कहानी बहुत पुरानी है। हिरण्यधनु भीलों का राजा था—बड़ा ही प्रतापी और शूरवीर। बड़े-बड़े क्षत्रिय राजा भी उसका लोहा मानते थे।

हिरण्यधनु का एक बेटा था—एकलव्य। वह भी अपने पिता की भाँति साहसी और लगनशील था। जब वह किसी काम में जुट जाता तो उसे पूरा करके ही छोड़ता।

एक दिन की बात है। एकलव्य जंगल में अकेला घूम रहा था। अचानक उसकी दृष्टि आखेट करते हुए राजकुमार पर गयी। वह मुग्ध होकर उसका तीर चलाना देखने लगा। उसने सोचा, "यदि मुझे भी इसी तरह तीर चलाना और निशाना साधना आ जाय तो कितना अच्छा हो। आखेट में कोई भी मेरी बराबरी नहीं कर सकेगा।"

उसने उसी समय राजकुमार के पास जाकर पूछा, "कुमार, आपने धनुष-विद्या किससे सीखी ? आपके गुरु कौन हैं ?"

राजकुमार का ध्यान भंग हुआ तो उसने कुछ क्रोध से एकलव्य की ओर देखा, फिर बड़ी रुखाई से उत्तर दिया, "गुरु द्रोणाचार्य," और शान से अकड़ता हुआ दूसरी ओर चला गया। एकलव्य को उसका यह घमंड अच्छा नहीं लगा। लेकिन उसने इस बात पर अधिक ध्यान नहीं दिया। इस समय तो उसका ध्यान कहीं और था। वह सोच रहा था कि यदि वह भी गुरु द्रोणाचार्य से शिक्षा लेले तो उसी कुमार की तरह एक कुशल धनुर्धर बन जायेगा।

घर पहुँचते ही एकलव्य ने गुरु द्रोणाचार्य के बारे में पूछा। हिरण्यधनु ने एकलव्य को बतलाया कि वे राजधानी में रहते हैं और महाराज धृतराष्ट्र के राजकुमारों को धनुर्विद्या सिखाते हैं। फिर हिरण्धनु ने कहा, "बेटा एकलव्य, द्रोणाचार्य जैसा धनुर्धारी इस धरती पर दूसरा नहीं है।"

पिता की बातों से एकलव्य का मन उत्साह से भर गया। वह बोला, "पिता जी, मैं भी आचार्य द्रोण से धनुर्विद्या सीखूँगा।" हिरण्यधनु चौंक उठा। "यह तो कभी संभव नहीं होगा," उसने मन ही मन सोचा। आचार्य द्रोण एक भीलकुमार को कभी धनुर्विद्या नहीं सिखायेंगे। उसने एकलव्य को समझाते हुए कहा,

"बेटा तुम अपने मन से यह बात निकाल दो। आचार्य द्रोण तुम्हें कभी अपना शिष्य नहीं बनायेंगे।"

"क्यों नहीं बनायेंगे ?" एकलव्य ने आश्चर्य से पूछा।

"क्योंकि बेटा, तुम क्षत्रिय नहीं हो। और आचार्य केवल क्षत्रिय कुमारों, विशेषकर राजकुमारों को ही धनुर्विद्या सिखाते हैं। पर इससे क्या, मैं यहीं तुम्हें धनुर्विद्या सिखाने का प्रबंध करा दूँगा।"

"नहीं पिता जी, नहीं," एकलव्य ने तेजी से कहा, "मैं धनुर्विद्या सीखूँगा तो आचार्य द्रोण से ही। बस, आप अनुमति दे दें।"

हिरण्यधनु अपने बेटे की धुन जानते थे। उन्हें मालूम था कि वह किसी के रोके नहीं रुकेगा। एकलव्य के इस गुण पर वह प्रसन्न भी थे। वे जानते थे कि किसी भी काम को पूरा करने के लिए लगन का होना जरूरी है। उन्होंने एकलव्य को राजधानी जाने की अनुमति दे दी।

दूसरे दिन ही एकलव्य राजधानी की ओर चल पड़ा। उस समय उसके मन में अपूर्व उत्साह था। इसलिए उसे यह भी पता न चला कि इतना लंबा रास्ता कैसे पूरा हो गया। राजधानी पहुँचकर आचार्य द्रोण का पता पूछते-पूछते एकलव्य उनकी कुटिया तक जा पहुँचा।

उस समय आचार्य अपनी कुटिया के भीतर बैठे राजकुमारों को धनुर्विद्या के सिद्धांत समझा रहे थे। साँवले रंग के एकलव्य को कुटिया के द्वार पर देख कर वे चौंक उठे। कुटी में बैठे राजकुमार भी आश्चर्य में पड़ गये। वे सोचने लगे कि इस भील को द्वार तक आने से प्रहरी ने रोका क्यों नहीं ? कुछ राजकुमारों को एकलव्य की यह ढिठाई बुरी भी लगी। आचार्य द्रोण भाँप गये कि भीलकुमार का यों अचानक वहाँ आ जाना राजकुमारों को बुरा लगा। उन्होंने मीठे स्वर में एकलव्य से पूछा, "कौन हो तुम, यहाँ क्यों आये हो ? क्या चाहते हो ?"

एक साथ इतने सारे प्रश्न सुन कर भी एकलव्य जरा भी विचलित नहीं हुआ। वह नपे-तुले कदमों से आचार्य द्रोण के पास पहुँचा। उनके चरणों में सिर नवाते हुए उसने कहा, "आचार्य, मैं भीलराज हिरण्यधनु का पुत्र हूँ। मेरा नाम एकलव्य है। मैं आपसे धनुर्विद्या सीखने की कामना से यहाँ आया हूँ। कृपा कर मुझे भी अपना शिष्य बना लें।"

एकलव्य की बात पूरी होने भी न पायी थी कि सारे राजकुमार खिलखिला कर हँस पड़े। एकलव्य समझ गया कि वे उस पर हँस रहे हैं। उसका चेहरा क्रोध से तमतमा गया, लेकिन उसने कुछ कहा नहीं। उसने बड़ी आशा से आचार्य द्रोण की ओर देखा। वे भी बड़ी गंभीरतापूर्वक उसी की ओर देख रहे थे। उन्होंने उसे समझाते हुए कहा, "भीलकुमार, मैं तुम्हें अपना शिष्य नहीं बना सकता। मैं केवल क्षत्रिय कुमारों को ही धनुर्विद्या सिखाता हूँ। जाओ, अपने घर लौट जाओ।"

एकलव्य को डर था कि आचार्य द्रोण यही जवाब देंगे। पर उसे पूरा भरोसा था कि वह उन्हें मना लेगा। उसने बड़े ही मार्मिक स्वर में कहा, "मैं प्रण कर चुका हूँ कि धनुर्विद्या सीखूँगा तो आपसे ही। मेरा प्रण पूरा नहीं हुआ तो मैं घर नहीं लौटूँगा। कृपा कर आप मुझे भी अपना शिष्य बना लें।" पर आचार्य द्रोण भी विवश थे। वे एकलव्य की प्रार्थना को स्वीकार नहीं कर सके।

भारी मन से एकलव्य कुटिया से बाहर निकल आया। उसे कुछ सूझ नहीं रहा था कि क्या करे। हार भी नहीं मानना चाहता था। क्षत्रियकुमारों का इस तरह उसकी खिल्ली उड़ाना उसको बहुत ही बुरा लगा था। उनकी व्यंग्य से भरी हँसी उसके दिल को लग गयी थी। कभी उसे अपने पिता की चेतावनी याद आती और कभी अपना प्रण। कभी उसकी आँखों के आगे व्यंग्य से खिलखिलाते राजकुमारों के चेहरे घूम जाते। उसकी याद आते ही एकलव्य तिलमिला उठा। उसकी मुट्ठियाँ भिंच गयीं। उसने मन-ही-मन एक संकल्प कर लिया।

कुटिया से निकल कर एकलव्य घर नहीं लौटा। जंगल में रहने लगा। वहाँ उसने आचार्य द्रोण की मिट्टी की एक मूर्ति बनायी। मूर्ति बनाने के बाद एकलव्य ने पास ही एक कुटी बनायी। उसमें रहते हुए अकेला धनुर्विद्या का अभ्यास करने लगा। पौ फटने से लेकर आधी रात तक तरह-तरह से तीर चलाने का अभ्यास किया करता। सूरज और चाँद बारी-बारी से निकलते और डूब जाते। ऋतुएँ आतीं और चली जातीं। एकलव्य को भीषण गरमी भी विचलित नहीं कर पायी। बसंत ऋतु उसे अपने लक्ष्य से नहीं डिगा सकी। कठिन अभ्यास और परिश्रम का फल मिला। एकलव्य कुशल धनुर्धर हो गया।

एक दिन की बात है। एकलव्य अपने मिट्टी के गुरु के आगे खड़ा होकर लक्ष्य साध रहा था। एक हाथ धनुष सँभाले था, दूसरा कान तक प्रत्यंचा ताने था। सहसा एक कुत्ता उसके पास आकर भौं-भौं करने लगा। उसकी भौंक से एकलव्य का ध्यान बँटने लगा। एकलव्य ने पहले उसे भगाने की कोशिश की, पर कुत्ता नहीं भागा। तब उसने शब्दभेदी बाण चला कर उसका मुँह सी दिया। बाणों से बिंधा कुत्ता तिलमिलाकर भाग खड़ा हुआ। यह कुत्ता कौरव-पांडव राजकुमारों का था। वे सब वन में आखेट के लिए आये थे। उन्होंने कुत्ते की यह हालत देखी

तो चकरा गये। पहले तो उन्हें अपनी आँखों पर विश्वास न हुआ। स्पष्ट था कि किसी बहुत ही कुशल धनुर्धर ने कुत्ते का मुँह सिया था। वे सब अब तक अर्जुन को ही सबसे श्रेष्ठ धनुर्धर मानते थे। पर यहाँ तो कोई उससे भी आगे निकल गया था। कुत्ते को लेकर द्रोणाचार्य के पास पहुँचे।

कुत्ते की हालत देखकर द्रोणाचार्य भी आश्चर्यचकित हो गये। वे मन ही मन उस अज्ञात धनुर्धर की प्रशंसा किये बिना भी न रह सके। उसने कितनी सफाई से कुत्ते का मुँह बंद कर दिया था। वे राजकुमारों के साथ उस धनुर्धर की खोज में निकल पड़े। कुछ ही दूर जाने पर उन्हें एकलव्य दिखायी दिया। आचार्य द्रोण उसे पहचान गये। उन्होंने उसके पास जाकर बड़े स्नेह से पूछा, "पुत्र, तुम तो बहुत अच्छे धनुर्धर हो गये हो। तुम्हारे गुरु कौन हैं?"

"आदरणीय आचार्य द्रोण," एकलव्य ने बड़ी विनम्रता से कहा।

"आचार्य द्रोण?" सभी राजकुमार और द्रोणाचार्य स्वयं आश्चर्य से बोल उठे।

"हाँ, आचार्य द्रोण," कहकर एकलव्य ने प्रतिमा की ओर इशारा कर दिया। फिर उसने आचार्य द्रोण को सारी घटना कह सुनायी। आचार्य द्रोण उसकी लगन देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए। आज तक ऐसा दृढ़ प्रतिज्ञ किशोर उन्होंने नहीं देखा था। उन्हें पछतावा भी होने लगा कि उन्होंने ऐसे होनहार शिष्य को लौटा दिया था। तभी उन्हें अर्जुन को दिया गया अपना वचन याद आया। उन्होंने वचन दिया था कि अर्जुन से श्रेष्ठ धनुर्धर और कोई न हो सकेगा। पर एकलव्य तो अर्जुन से कई गुना श्रेष्ठ जान पड़ता था। आचार्य द्रोण चिंतित हो उठे। सहसा उन्हें एक उपाय सूझ गया। कुछ सोचकर उन्होंने एकलव्य से कहा, "बेटा, जब तुमने मुझे अपना गुरु मान लिया है, तब मैं भी स्वीकार करता हूँ। पर तुम गुरु-दक्षिणा क्या दोगे?"

एकलव्य ने सिर झुका कर कहा, "जो आज्ञा दें, गुरुदेव।"

"तो तुम मुझे अपने दायें हाथ का अँगूठा दे दो," द्रोण ने तत्काल कहा।

एक क्षण को सब स्तब्ध रह गये। फिर एकलव्य ने बिना झिझके अपना दायाँ अँगूठा काट डाला और उसे आचार्य द्रोण को भेंट कर दिया। द्रोण उसकी गुरुभक्ति पर गद्गद हो उठे। उनकी आँखों से आँसू टपक पड़े। श्यामल रंग

के उस भीलकुमार का चेहरा एक अपूर्व तेज से मंडित था। द्रोण ने कौरव-पांडव कुमारों की ओर देखा। सबकी नजरें आश्चर्य से फटी-की-फटी रह गयीं। उनको लग रहा था कि भीलकुमार उन सबसे, यहाँ तक कि गुरु द्रोणाचार्य से भी, बहुत, बहुत बड़ा है।

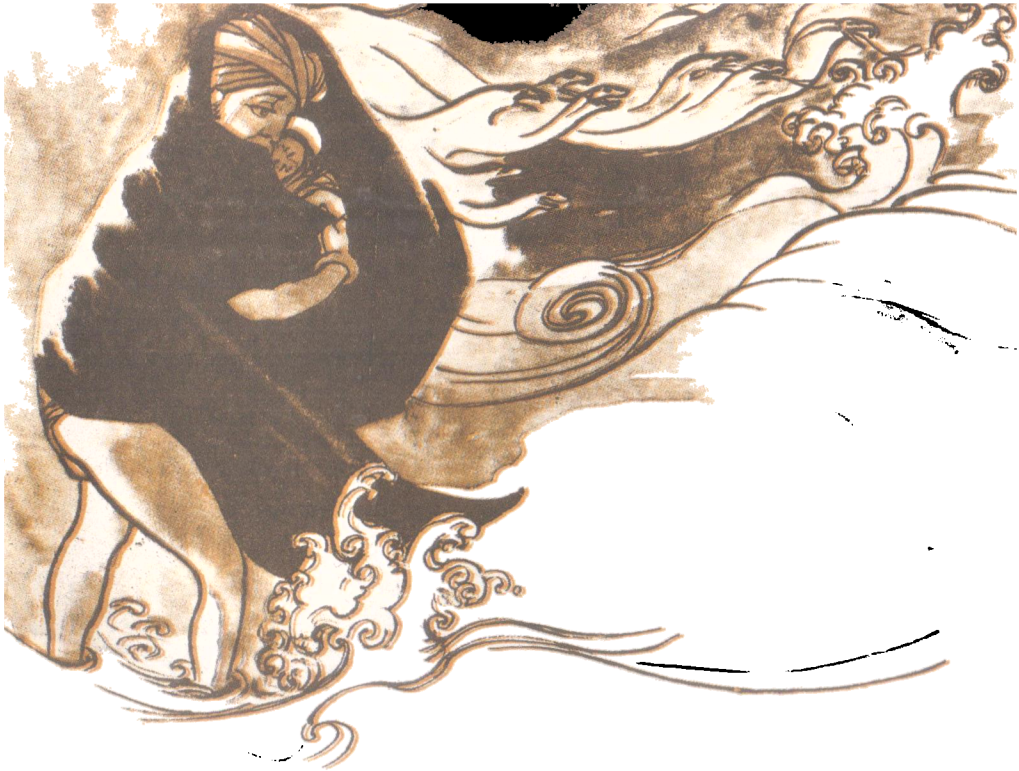

बालकृष्ण

भादों की अष्टमी थी और आधी रात का समय। घटाटोप अँधकार छाया था। आकाश में काली घटाएँ हाथियों के झुंड की तरह जमा हो गयी थीं। बादलों की गड़गड़ाहट के साथ जब बिजली चमकती तो लगता कि सारी धरती काँपने लगी है।

मथुरा के निवासी अपने-अपने घरों में सोये पड़े थे। ऐसे समय भला घर

से बाहर कौन निकलता ? लेकिन मथुरा के राजा कंस की आँखों में नींद नहीं थी। जिस दिन से उसने यह भविष्यवाणी सुनी थी कि उसकी बहिन देवकी की संतान उसकी हत्या करेगी, उसकी भूख और नींद सब गायब हो गयी थी। उसने देवकी और उसके पति वसुदेव को कारागार में डलवा दिया था। कारागार में ही देवकी ने सात बच्चों को जन्म दिया और कंस ने हर एक को उसके जनमते ही मार डाला। वह किसी तरह का खतरा मोल लेना नहीं चाहता था। अब देवकी आठवीं संतान को जन्म देनेवाली थी।

कंस अत्याचारी राजा था। वह अपने पिता राजा उग्रसेन को बंदी बना कर खुद राजा बन बैठा था। उसने न जाने कितनों को मारा था, कितनों को सताया था। प्रजा त्राहि-त्राहि कर रही थी। अब यह जानकर कि उसको मारने-वाला उसकी बहिन के ही गर्भ से पैदा होनेवाला है, उसकी चिंता की सीमा नहीं थी।

ठीक बारह बजे रात को, रोहिणी नक्षत्र में देवकी ने अपनी आठवीं संतान कृष्ण को जन्म दिया। उस साँवले बालक के जनमते ही कारागार की उस कोठरी में अचानक प्रकाश छा गया। देवकी और वसुदेव दोनों ही समझ गये कि यह बालक साधारण नहीं है, कंस का अंत इसके हाथों ही होगा। उन्होंने पहले ही निश्चय कर लिया था कि जैसे भी हो, वे कंस से अपने इस बालक की रक्षा करेंगे। वसुदेव ने चुपचाप बच्चे को एक टोकरी में लिटा दिया और द्वार की ओर चले। कारावास के द्वार अपने आप खुल गये। सैनिक गहरी नींद में मस्त पड़े थे। वसुदेव दबे पाँव बाहर निकल गये। किसी ने उनको नहीं देखा।

वर्षा की उस अँधेरी रात में जब सारी मथुरा नगरी सुख की नींद सो रही थी, वसुदेव सर पर टोकरी रखे यमुना किनारे पहुँचे। मूसलाधार वर्षा हो रही थी। अँधेरा इतना था कि हाथ को हाथ नहीं सूझता था। यमुना में बाढ़ आयी हुई थी। लेकिन वसुदेव नदी के पास पहुँचे तो देख कर दंग रह गये कि नदी का पानी

अपने-आप उतरने लगा। वह आसानी से नदी पार करके गोकुल पहुँच गये।

गोकुल में भी चारों ओर सन्नाटा था। कोई जाग नहीं रहा था। वसुदेव अपने मित्र नंद के घर पहुँचे। तभी नंद की पत्नी यशोदा ने भी कन्या को जन्म दिया था। नंद ने चुपचाप बच्ची को खटोले में से उठाकर टोकरी में रखा और टोकरी में पड़े बालक कृष्ण को खटोले में सुला दिया। फिर उसी प्रकार दबे पाँव लौट गये। यमुना में अब भी पानी चढ़ा नहीं था, मानो उनकी प्रतीक्षा कर रहा हो। ज्योंही वसुदेव ने नदी पार की और मथुरा में पैर रखा, नदी फिर पूरे बाढ़ पर आ गयी।

इस चमत्कार पर मन ही मन आश्चर्य करते हुए वसुदेव कारावास वापस पहुँचे। द्वार भी खुला पड़ा था और संतरी उसी प्रकार नींद में बेहोश पड़े थे। ज्योंही वे अंदर घुसे, फाटक अपने-आप ही बंद हो गया। किसी को कानोंकान खबर न हुई।

देवकी की गोद में जाते ही बालिका रोने लगी और संतरी हड़बड़ा कर उठ बैठे। सारे कारागार में गुहार मच गयी कि देवकी की आठवीं संतान पैदा हो गयी है।

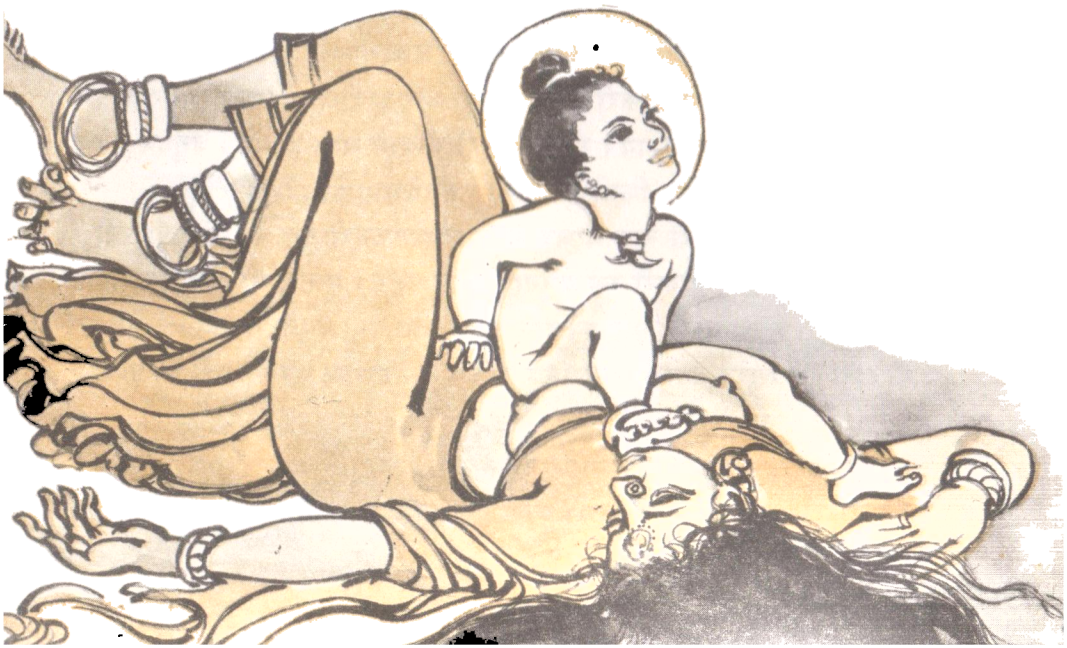

कई सैनिक कंस को समाचार देने राजमहल की ओर दौड़े। कंस उस समय अपमे शयनागार में चहलकदमी कर रहा था। बीच-बीच में द्वार की ओर देखता जाता था कि कहीं कोई उसके हत्यारे के जन्म का समाचार लेकर तो नहीं आ रहा है। तभी बदहवास-से सैनिकों ने आकर हाँफते हुए कहा, "अन्नदाता! अन्नदाता! देवी देवकी ने कन्या को जन्म दिया है।"

यह सुनते ही कंस तलवार खींचकर नंगे पैरों कारागार की ओर दौड़ा। कारागार के संतरी राजा का उग्र रूप देख कर परे हट गये। फाटक खोल दिया गया। कंस ने लपक कर देवकी की गोद से बच्ची को छीन लिया। उसे वह एक शिला पर पटकने जा रहा था कि बच्ची उसके हाथों से छूट कर पक्षी की तरह आकाश में उड़ गयी और बोली, "पापी कंस, तुझे मारनेवाला तो धरती पर ही है।"

यह सुनते ही कंस क्रोध से काँप उठा। उसने हुक्म दिया कि सारी ब्रजभूमि में उस रात जितने भी बच्चे पैदा हुए हैं, सबको मार डाला जाय। इस काम के लिए उसने कई लोगों को नियुक्त किया जिनमें कुछ स्त्रियाँ भी थीं। उनमें एक का नाम था पूतना।

कंस द्वारा छोड़े गये हत्यारे ब्रज में घूम-घूम कर नवजात शिशुओं की हत्या करने लगे। चारों ओर आतंक फैल गया।

पूतना तरह-तरह के रूप भर सकती थी, इसलिए वह नित्य नये-नये रूप बदलकर कोमल निर्दोष शिशुओं की हत्या करने लगी।

भेष बदल कर वह नंद के घर भी पहुँची। उस समय वहाँ छठी का उत्सव मनाया जा रहा था। पूतना ने बच्चे को प्यार करने के बहाने अपनी गोद में ले लिया। फिर उसे वह दूध पिलाने लगी। पूतना ने अपनी छाती पर तेज़ विष लगा रखा था। उसने सोचा था कि उसका दूध पीते ही बच्चा मर जायेगा। पर हुआ उलटा ही। उस नन्हे बच्चे ने इतनी जोर से दूध खींचा कि पूतना चीख मार कर गिर पड़ी और तड़प कर मर गयी। मरते ही उसका भयानक असली रूप भी प्रगट हो गया।

कंस को जब पूतना की मृत्यु का समाचार मिला तो वह बड़ा बेचैन हो उठा। उसको पूतना पर बड़ा विश्वास था। फिर उसने पूतना के भाई बकासुर को

श्रीकृष्ण का वध करने के लिए भेजा। उसका भी पूतना जैसा ही हाल हुआ। अब उसका भाई अघासुर भेजा गया। उसे भी बालक कृष्ण के हाथों प्राण गँवाने पड़े।

कंस षड़यंत्र रचता रहा। वह कृष्ण के प्राण लेने की नित नयी कोशिशें करता। पर हर बार उसकी चाल निष्फल हो जाती।

धीरे-धीरे कृष्ण कुछ बड़े हुए। वे बाँसुरी बजाते, दूसरे ग्वालों के साथ गऊएँ चराते, और उनके साथ तरह-तरह के खेल खेलते।

यमुना में कालिय नामक एक विषैला नाग अपने परिवार के साथ रहता था। उसके कारण यमुना का सारा पानी जहरीला हो गया था। उसके तट पर लगे हरे-भरे वृक्ष और फूलों से लदे पौधे मुरझा कर सूख गये थे। जब ग्वाल-बाल और गऊओं ने यमुना का ऐसा विषैला जल पिया तो उनकी भी बुरी दशा हो गयी। श्रीकृष्ण को इसका पता चला तो उन्होंने उसी समय उस विषैले नाग को यमुना से बाहर निकालने का निश्चय कर लिया।

एक दिन श्रीकृष्ण ग्वाल-बालों के साथ यमुना के तट पर गेंद खेल रहे थे। अचानक गेंद नदी में चली गयी। श्रीकृष्ण उसी समय उसको निकालने के लिए यमुना में कूद पड़े। यह देख तट पर एकत्र ग्वाल-बाल चीखने-चिल्लाने लगे। उनके माता-पिता भी वहाँ इकट्ठे हो गये। नंद और यशोदा को खबर मिली तो वे भी वहाँ दौड़े-दौड़े आये। जब उन्होंने देखा कि कृष्ण पानी के अंदर ही रह गये तो डर के मारे उनके प्राण गले में आ अटके। उधर जब कालिय नाग ने कृष्ण को यमुना के भीतर देखा तो क्रोधित हो फुफकार कर उनकी ओर लपका। किंतु कृष्ण भी चौकन्ने थे। नाग ज्यों ही पास आया छलाँग मार कर उसके फन पर चढ़ गये। कालिय नाग के एक नहीं, सैकड़ों फन थे। वह उन्हें फैलाकर कृष्ण को डसने की कोशिश करने लगा। कृष्ण ने फुरती के साथ एक-एक फन को अपने नन्हे पैरों से कुचलना शुरू कर दिया। नाग तिलमिला उठा और घबरा कर यमुना के बाहर निकल गया।

वह दृश्य देखने लायक था। सैकड़ों फनोंवाले कालिय नाग के सिर पर बालक कृष्ण नाच रहे थे। साथ ही अपनी नन्ही बाँसुरी भी बजाते जा रहे थे।

उनका यह रूप देख कर सारे ब्रजवासी मुग्ध हो गये। उधर कालिय नाग का बुरा हाल था। उसके फनों से खून निकलने लगा था। पीड़ा के कारण उसका सारा शरीर छटपटा रहा था। कालिय नाग की पत्नियों से उसकी यह दुर्दशा देखी न गयी। वे हाथ जोड़कर कृष्ण की प्रार्थना करने लगीं। कृष्ण को उन पर दया आ गयी। उन्होंने एक शर्त पर दुष्ट कालिय को छोड़ने का वचन दिया। उन्होंने कहा, "यदि कालिय इसी समय यमुना को छोड़कर रमणक द्वीप चला जाये तो मैं उसे छोड़ दूँगा।" उसने कृष्ण की बात मान ली और उसी समय

अपने परिवार के साथ रमणक द्वीप रवाना हो गया। इस घटना के बाद तो सभी कृष्ण के भक्त बन गये। उनकी वीरता की यह कहानी कालिय-मर्दन के नाम से प्रसिद्ध है।

कृष्ण का बचपन ऐसी अनेक घटनाओं से भरा था। वे साहसी और निर्भय थे। उनकी मुरली में जादू था। उसकी धुन सुनकर गायें घास चरना छोड़ देती थीं। ब्रज की नारियाँ अपने सारे काम भूलकर उनके पास आ बैठती थीं। वे कृष्ण से बहुत प्रेम करती थीं और उनसे छेड़-छाड़ भी किया करतीं थीं। कभी वे उनकी मुरली छिपा देतीं, कभी उनके शीश पर लगे मोर-मुकुट को ही गायब कर देतीं। कृष्ण भी उनकी शरारतों का जवाब शरारतों से ही दिया करते थे। कभी वह उनका माखन चुरा कर खा जाते, कभी उनकी गगरी फोड़ दिया करते। इस प्रकार ब्रजवासियों का जीवन बड़े आनंद में बीत रहा था।

एक दिन की बात है। कृष्ण ने देखा कि ब्रज में किसी उत्सव की तैयारियाँ की जा रही हैं। उन्होंने नंद बाबा से उसके बारे में पूछा तो उन्होंने बतलाया कि सारे ब्रज में इंद्र की पूजा की तैयारियाँ की जा रही हैं। उन्होंने कहा, "बेटा, इंद्र मेघों के स्वामी हैं। वे ही जल बरसाते हैं। इसी जल के कारण खेतों में अन्न उपजता है। इसलिए हम प्रति वर्ष इस तरह का यज्ञ करते हैं और इंद्र को भेंट चढ़ाते हैं।"

कृष्ण को यह बात कुछ जँची नहीं। उन्होंने कहा, "बाबा, मेघों का तो काम ही है पानी बरसाना। इससे इंद्र को क्या लेना-देना। हमें अब से इंद्र की पूजा करने की बजाय अपने पर्वत गोवर्धन की पूजा करनी चाहिए। जब बादल पहाड़ से टकराते हैं तभी तो पानी बरसता है। इसमें इंद्र का क्या काम ?"

यह बात सभी को उचित लगी। उन सबने तय किया कि उन्हें गोवधन की पूजा करनी चाहिए। सारे ग्वाल-बाल अपने-अपने छकड़ों पर चढ़कर गोवर्धन की पूजा और परिक्रमा करने लगे।

इंद्र को यह सब पता चला तो वह बहुत क्रोधित हुए। वह लगे मूसलाधार पानी बरसाने। इतना पानी बरसा कि थोड़ी ही देर में सारा ब्रज डूब गया। सारी जनता हाहाकार करने लगी। सब दौड़े-दौड़े कृष्ण के पास पहुँचे। लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब श्रीकृष्ण ने हँसते-हँसते अपनी छोटी उँगली पर सारा पर्वत उठा लिया। सारा गाँव उसके नीचे इकट्ठा हो गया। इस प्रकार श्रीकृष्ण ने बाढ़ से उनकी रक्षा की।

सात दिनों तक श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को इसी तरह अपनी उँगली पर उठाये रखा। अंत में इंद्र को हार माननी पड़ी। उनका गर्व चूर हो गया। सारे ब्रजवासी कृष्ण के भक्त बन गये। लोग उनको गोवर्धनधारी पुकारने लगे।

कंस अब भी अपनी चालें चलता रहा और श्रीकृष्ण और बलराम की हत्या के प्रयत्न करता रहा। उसने अरिष्टासुर, केशी और व्योमासुर नामक दैत्यों को उनकी हत्या के लिए भेजा। लेकिन वे सब श्रीकृष्ण और बलराम के हाथों मारे गये।

कंस ने देखा कि ब्रज में तो श्रीकृष्ण और बलराम को मारना कठिन है। इसलिए उसने एक और चाल चली। उसने मथुरा में एक विशाल उत्सव का आयोजन किया। उसमें उसने श्रीकृष्ण और बलराम को आमंत्रित किया।

श्रीकृष्ण को संदेश मिला तो फौरन ही मथुरा जाने को तैयार हो गये। बलराम भी पीछे न रहे। किंतु श्रीकृष्ण और बलराम के मथुरा जाने के समाचार से सारे ब्रजवासियों को बड़ा दुख हुआ। पर श्रीकृष्ण के सामने तो कंस के अत्याचारो को खत्म करने का महान उद्देश्य था। वह बिना मथुरा जाये नहीं हो सकता था। इसलिए सारे ग्वाल-बालों और गोप-गोपियों को समझा-बुझाकर वे नंद बाबा, बलराम तथा अन्य गोपों के साथ मथुरा चल पड़े। ब्रज के सारे लोग श्रीकृष्ण को बिदाई दे रहे थे। उनके आँसू थमते ही नहीं थे। गोपियों ने तो खाना-पीना त्याग दिया। कहाँ तो ब्रज में हँसी-मजाक और रासलीला की धूम मची रहती

थी, और कहाँ अब चारों ओर उदासी छा गयी।

श्रीकृष्ण जब मथुरा पहुँचे तो उन्हें देखने के लिए सड़कों पर बड़ी भीड़ लग हो गयी। मथुरा के लोग उनकी वीरता के बखान सुन चुके थे।

कृष्ण कुछ आगे बढ़े थे कि उन्हें टेढ़े-मेढ़े शरीर वाली एक स्त्री मिली जो

चंदन का बर्तन लिए चली आ रही थी। कृष्ण ने उसे रोक कर पूछा कि वह कौन है और कहाँ जा रही है।

उस स्त्री ने कहा, "मेरा नाम त्रिवला है। किंतु मेरा शरीर टेढ़ा है न, इसलिए लोग मुझे कुब्जा कहते हैं। मैं महाराज कंस के लिए चंदन ले जा रही हूँ।"

श्रीकृष्ण ने कहा, "लाओ, यह चंदन हमें ही लगा दो।"

कुब्जा बड़ी हँसमुख थी। उसने सोचा चलो अच्छी दिल्लगी रहेगी और उसने सारा चंदन कृष्ण के शरीर पर लगा दिया। चारों ओर सुगंध फैल गयी। श्रीकृष्ण ने कुब्जा को पुरस्कार देना चाहा। उन्होंने अपने पाँव से उसके पैरों की नसों को एक झटका दिया। झटका देते ही उसका टेढ़ा-मेढ़ा शरीर सीधा हो गया। कुरूप कुब्जा क्षण भर में अपूर्व सुंदरी हो गयी। पल भर में ही यह समाचार सारी मथुरा में फैल गया कि कृष्ण ने कुब्जा को नया रूप दे दिया है। लोग सुनकर बड़े चकित हुए।

कुब्जा को आश्चर्यचकित छोड़कर कृष्ण ग्वाल-बालों के साथ उस स्थान पर पहुँचे जहाँ धनुषयज्ञ हो रहा था। वहाँ प्रहरियों और सैनिकों ने उन्हें रोकने की चेष्टा की। देखते-देखते कृष्ण ने धनुष के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। उन्होंने वहाँ मौजूद असुरों का भी संहार कर दिया।

कंस को अब तक सारे समाचार मिल चुके थे। वह मन-ही-मन भयभीत था। किंतु उसे अभी अपने पहलवानों पर विश्वास था। उसे भरोसा था कि हाथियों जैसे उसके पहलवानों के आगे कृष्ण और बलराम भी नहीं टिक पायेंगे। इस तरह अपने मन को समझाता हुआ वह सोने की कोशिश करने लगा। किंतु उसे रात भर नींद नहीं आयी। सपने में उसने देखा कि वह गधे पर सवार है, उसका मुँह काला है और वह राज्य से बाहर जा रहा है। इसे भयानक अपशकुन समझ कर कंस घबरा उठा। दूसरे दिन वह उत्सव में शामिल हुआ तो बहुत डरा हुआ था।

इस युद्ध में भाग लेने के लिए दूर-दूर से पहलवान आये हुए थे। कंस के भीमकाय पहलवान तो थे ही। जहाँ यह उत्सव हो रहा था, उसके प्रवेश-द्वार पर उसने कुवलयापीड़ नाम के एक हाथी को बँधवा रखा था। यह हाथी बड़ा खूँख्वार था। उसके महावत को आदेश था कि कृष्ण और बलराम को देखते ही कुवलयापीड़

से उन्हें कुचलवा डाले। इसलिए जब दोनों भाई अपने सखा के साथ वहाँ पहुँचे तो महावत का आदेश पाकर हाथियों ने उन्हें कुचलने की कोशिश की। किंतु उसे लेने के देने पड़ गये।

श्रीकृष्ण पहले तो कुवलयापीड़ को छकाते रहे। फिर उन्होंने उसकी सूँड पकड़कर इतनी जोर

से झटका दिया कि वह चिंघाड़ उठा, और धरती पर लोटने लगा। थोड़ी ही देर में वह मर गया।

उधर भीतर पहलवानों को जोश दिलाने के लिए तरह-तरह के बाजे बजाये जाने लगे। कृष्ण बलराम के साथ भीतर घुसे। उन्हें देखते ही कंस की आँखों में भय उतर आया। तभी उसके एक पहलवान चाणूर ने श्रीकृष्ण को मल्ल-युद्ध के लिए ललकारा। उधर मुष्टिक नामक एक दूसरे मल्ल ने बलराम को चुनौती दी। दोनों भाई कब पीछे हटनेवाले थे? वे भी ताल ठोककर अखाड़े में कूद पड़े। पहले तो लोग उनका साहस देखकर हँस पड़े। भला यह जरा से बालक इन

पहलवानों से क्या लड़ेंगे ?

स्त्रियों को तो दोनों बालकों पर दया आयी और वे कंस की निंदा करने लगीं। अखाड़े में श्रीकृष्ण और बलराम अपने से भी भीमकाय पहलवानों को पछाड़ने में लगे हुए थे। जब बहुत देर हो चुकी तो श्रीकृष्ण ने चाणूर को मार डालने का फैसला कर लिया। उन्होंने उसे जमकर एक घूसा मारा। घूसा लगते ही चाणूर चीत्कार कर धरती पर गिर पड़ा। उधर बलराम ने मुष्टिक को खतम कर दिया।

उन दोनों के मरने के बाद कंस ने कूट, शल्य, तोशल नामक और मल्लों को युद्ध के लिए भेजा। उनकी भी वही गति हुई। अब तो कंस घबरा गया। फिर उसने आखिरी बार तलवार का सहारा लिया। कृष्ण उसकी चाल समझ गये। बिजली की गति से वे कूद कर उसके सिंहासन पर जा पहुँचे। उन्होंने कंस के बाल पकड़ कर उसे नीचे खींच लिया। उसकी छाती पर सवार होकर अंधाधुंध

घूँसे बरसाने लगे। थोड़ी ही देर में कंस मर गया। कंस का संहार करने के बाद श्रीकृष्ण ने कंस के पिता और अपने नाना उग्रसेन को राजसिंहासन पर बिठाया। वे अपनी माँ देवकी और पिता वसुदेव से मिले।

सारे राज्य में खूब खुशियाँ मनायी गयीं। मथुरा में कृष्ण का काम समाप्त हो चुका था। मथुरा में कुछ दिन बिताने के बाद वे बलराम के साथ अवंतीपुर (उज्जैन) की ओर चल पड़े। वहाँ संदीपन मुनि के आश्रम में रह कर विद्योपार्जन करने लगे।

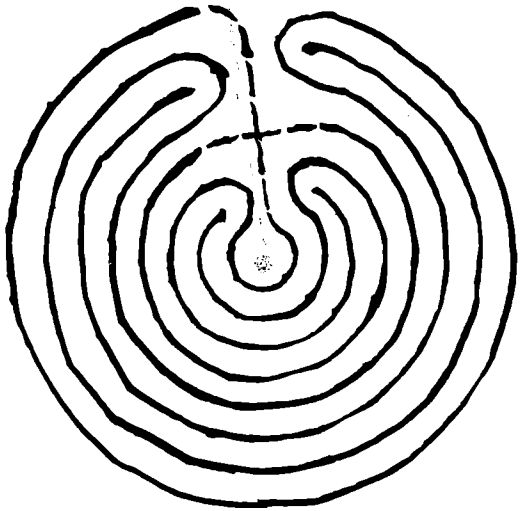

चक्रव्यूह में फँसा अकेला योद्धा

महाभारत युद्ध का बारहवाँ दिन था।

आज की लड़ाई में अर्जुन ने शकुनि को घायल कर दिया था। उसके दोनों भाई वृषक और अचल मारे गये थे। अर्जुन के रणकौशल के सामने आचार्य द्रोण जैसे योद्धाओं की भी नहीं चल पायी थी। इसलिए कौरवों की सेना में उदासी और चिंता छायी थी और पांडवों के शिविर में उत्साह और आनंद था।

इस पराजय ने दुर्योधन को क्रोध से पागल बना दिया। वह पूज्य गुरुजन को भला-बुरा कहने लगा। सैनिकों की उपस्थिति में ही उसने आचार्य द्रोण पर यह आरोप लगा दिया कि अर्जुन के प्रति स्नेह होने के कारण ही वे अपनी पूरी शक्ति के साथ युद्ध नहीं कर रहे हैं। उसने यह भी कहा कि वे पांडवों के साथ पक्षपात करते हैं।

आचार्य द्रोण अपने इस अपमान से तिलमिला उठे। उन्होंने दुख भरे स्वर में कहा, "दुर्योधन, मैं अपनी पूरी शक्ति के साथ पांडवों के साथ युद्ध कर रहा हूँ। फिर भी तुम इस तरह का संदेह करते हो। मैंने तुमसे पहले भी कहा था और अभी भी कहता हूँ कि तुम किसी तरह अर्जुन को पांडवों से अलग कर दो। मै एक ही दिन में उन्हें हरा दूँगा। जब तक अर्जुन पांडवों के साथ हैं, तब तक उनको हराना संभव नहीं है।"

आचार्य द्रोण की बातें सुनकर दुर्योधन अगले दिन के युद्ध की योजना बनाने में लग गया।

तेरहवाँ दिन शुरू हुआ।

दोनों पक्षों के सैनिक अस्त्र-शस्त्र सँभाल कर युद्ध की तैयारी में लग गये। अर्जुन लड़ते-लड़ते दक्षिण की ओर चले गये। उनके वहाँ से हटते ही द्रोण ने मौका पाकर अपनी सेना को चक्र-व्यूह में खड़ा किया। फिर अन्य वीरों के साथ

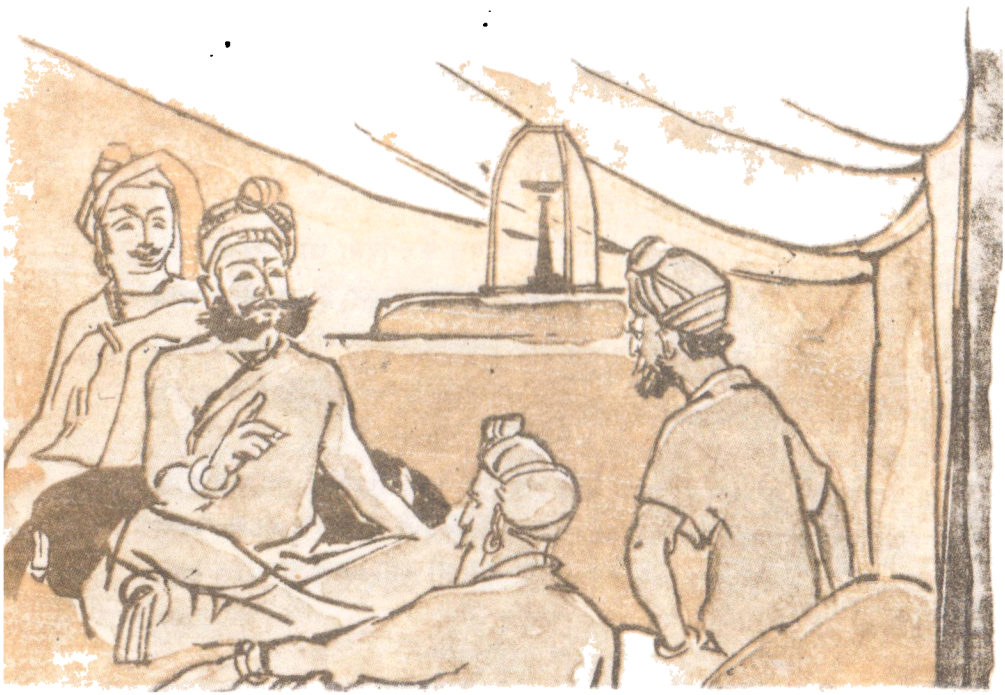

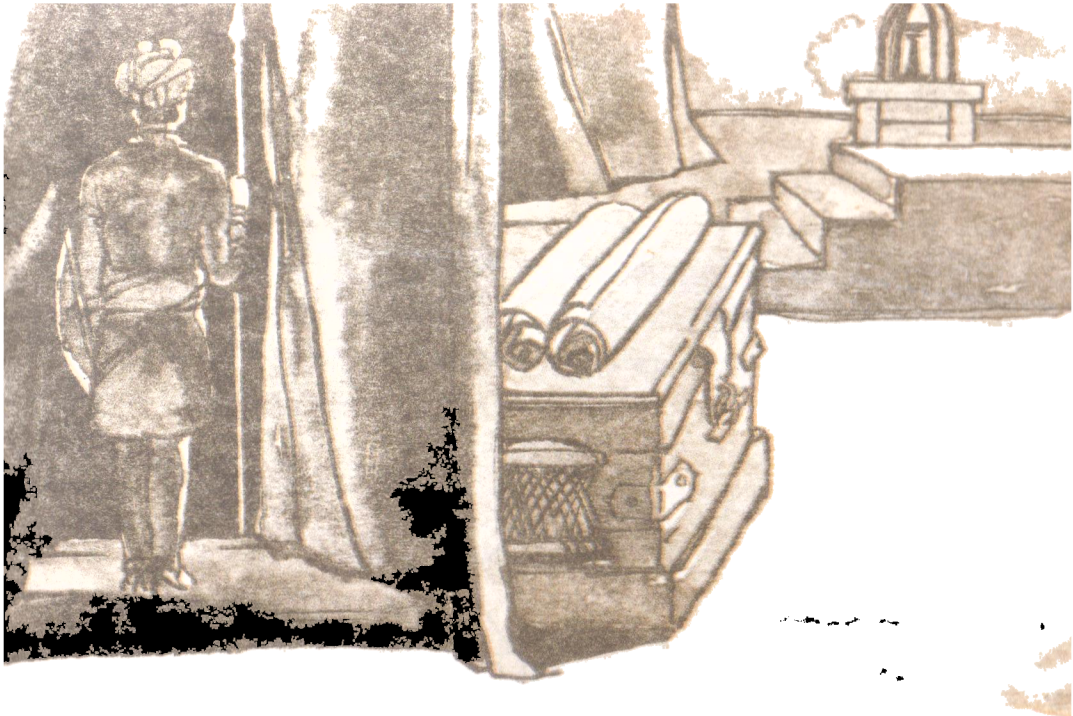

उन्होंने पांडवों की सेना पर धावा बोल दिया। पांडव सेना ने आचार्य का सामना किया। पर द्रोणाचार्य का सामना करना खेल न था। चक्रव्यूह को भेद कर उसमें प्रवेश करना उनमें से किसी को नहीं आता था। अपने पक्ष की हार होते देख कर युधिष्ठिर चिंता में पड़ गये। अर्जुन वहाँ थे नहीं। और किसी को चक्रव्यूह का भेद मालूम न था।

सहसा उन्हें अभिमन्यु का ध्यान आया। उन्होंने उसी समय अभिमन्यु को बुलाया। अभिमन्यु अर्जुन का पुत्र था। उसकी आयु केवल सोलह वर्ष की थी। परंतु अपने पिता की तरह वह वीर और साहसी था। यहाँ तक कि कौरव भी उस किशोर से डरते थे। युधिष्ठिर की आज्ञा पाकर अभिमन्यु फौरन उपस्थित हुआ। उसने आते ही युधिष्ठिर को प्रणाम किया। उसके मुख पर अपूर्व तेज को देख कर युधिष्ठिर की चिंता दूर हुई। उन्होंने उसको अपनी परेशानी के बारे में बताया और कहा कि चक्रव्यूह के अंदर प्रवेश न कर पाने के कारण न जाने कितने योद्धा अपनी जान से हाथ धो चुके हैं। अगर ऐसा ही हाल रहा तो

पांडवों की हार होने में देर नहीं।

अभिमन्यु ने कहा, "आप चिंता न करें, तात। मैं अकेला ही चक्रव्यूह में प्रवेश कर कौरवों की सेना को छिन्न-भिन्न कर दूँगा।" फिर उसने कुछ सोच कर कहा, "महाराज पर एक बात है। चक्रव्यूह भेद तो सकता हूँ, पर उसमें से निकलने की विद्या मुझे नहीं मालूम।"

उसने बताया कि जब वह अपनी माँ सुभद्रा के गर्भ में था तो पिता अर्जुन एक दिन माँ को व्यूह में प्रवेश करने का भेद बता रहे थे। वह इतना ही बता पाये थे कि माँ को नींद आ गयी। पिता ने आगे बात नहीं की। अपनी माँ के गर्भ से सुन कर अभिमन्यु ने व्यूह में प्रवेश करने का रहस्य तो जान लिया था, लेकिन उससे बाहर निकलने का उपाय नहीं जान पाया।

युधिष्ठिर उसकी बातें सुन कर बहुत प्रसन्न हुए। बोले, "बेटा, तुम एक बार चक्रव्यूह को तोड़ कर उसमें प्रवेश भर कर जाओ। बाद में हम लोग भी तुम्हारे पीछे-पीछे आ जायेंगे।" भीमसेन आदि ने भी यही बात कही। उस समय और कोई उपाय नहीं था।

युधिष्ठिर के चरण छूकर और उनका आशीर्वाद लेकर अभिमन्यु रथ में बैठा। वह कौरव सेना की ओर बढ़ चला। उधर कौरव सेना ने उसे आते देखा तो उनमें सनसनी फैल गयी। उन्होंने शोर मचाना शुरू किया, "अभिमन्यु आ गया।" ऐसा लग रहा था मानो सिंह का बच्चा हाथियों की भीड़ पर आक्रमण करने लपका जा रहा हो।

आनन-फानन अभिमन्यु चक्रव्यूह के पास पहुँचा। उसने बिजली की गति से आक्रमण कर दिया। थोड़ी ही देर में उसने चक्रव्यूह के द्वार को तोड़ दिया। वह इतनी तेजी से चक्रव्यूह तोड़ कर भीतर घुस गया कि पांडव सेना के सारे

योद्धा उसका साथ नहीं दे पाये। अकेला अभिमन्यु चक्रव्यूह में घुस गया। अपनी वीरता से वह कौरवों के छक्के छुड़ाता रहा। कौरव सेना को गाजर-मूली की तरह काटता हुआ वह आगे बढ़ता गया। लगता था मानो आग की ज्वाला हो! जो उसके सामने आता जलकर राख हो जाता।

अपनी सेना की दुर्दशा दुर्योधन से न देखी गयी। वह अकेला ही अभिमन्यु से युद्ध करने दौड़ पड़ा। आचार्य द्रोण ने अन्य योद्धाओं को भी दुर्योधन की सहायता के लिए भेजा। पर तब तक अभिमन्यु ने दुर्योधन का बुरा हाल कर दिया था। कौरव योद्धा बड़ी कठिनाई से उसके प्राण बचा पाये।

दुर्योधन की दुर्दशा देखकर कौरवों ने चालाकी से काम लिया। उन दिनों धर्मयुद्ध होते थे, युद्ध के मैदान में भी अनीति नहीं होती थी। एक योद्धा अकेला दूसरे से भिड़ता था। लेकिन कौरवों ने नीति को ताक में रख दिया। उन्होंने एक साथ अकेले बालक पर आक्रमण कर दिया। अभिमन्यु इससे भी विचलित नहीं हुआ। वह वीरतापूर्वक उन सबका सामना करने लगा।

अभिमन्यु का रणकौशल देखकर आचार्य द्रोण गद्‌गद हो उठे। उन्होंने कौरव योद्धाओं से कहा, "सचमुच, युद्ध में अभिमन्यु की बराबरी करनेवाला कोई नहीं है।"

दुर्योधन ने सुना तो चिढ़ कर बोल उठा, "आचार्य, अर्जुन से आपको स्नेह है। इसी कारण आप ऐसा कहते हैं। नहीं तो उस बालक में क्या धरा है? वह अभी सोलह साल का ही तो है। उसे मुट्ठी में मसला जा सकता है।"

दुर्योधन भूल गया था कि अभी कुछ समय पहले ही उसके प्राण संकट में थे। दुर्योधन के भाई दुःशासन ने इस बात का समर्थन किया। उसने कहा, "मैं अभी जाकर उस दुष्ट को ठिकाने लगाये देता हूँ।" यह कह कर वह अभिमन्यु पर टूट पड़ा। किंतु अभिमन्यु की वीरता ने उसके घमंड को चूर-चूर कर दिया। कुछ ही समय बाद दुःशासन घायल होकर अपने रथ में गिर पड़ा। उसे मूर्छित होता देखकर कौरव पक्ष में चारों ओर शोक की लहर दौड़ गयी। उधर पांडवों के सैनिक अभिमन्यु की जयजयकार से आकाश गुँजाने लगे।

यह देखकर कर्ण तिलमिला उठे। वह अपना धनुष सँभालते हुए अभिमन्यु

की ओर बढ़े। अभिमन्यु ने कर्ण का भी वीरतापूर्वक सामना किया। अन्य कौरव सैनिकों को भी उसने क्षत-विक्षत कर दिया। इससे सारी कौरव सेना तितर-बितर हो भाग खड़ी हुई। सोलह वर्ष के किशोर अभिमन्यु ने अकेले ही कौरवों की सेना के छक्के छुड़ा दिये थे। लगता था, उसे हराना कौरवों के लिए कठिन है। द्रोणाचार्य का सपना भी टूट रहा था। अर्जुन को वहाँ से दूर ले जाने की चाल काम नहीं आयी। अभिमन्यु सारी कौरव सेना के वीरों को नीचा दिखा रहा था। यह देखकर दुःशासन के बेटे लक्ष्मण से न रहा गया। वह भी अभी बालक ही था। वह हाथ में गदा लेकर चल पड़ा। इससे कौरव सेना में भी जोश आ गया। भागते हुए सैनिक रुक गये। वे फिर युद्ध के लिए तैयार हो गये। अभिमन्यु और लक्ष्मण दोनों बालक जूझ उठे। लक्ष्मण भी वीरतापूर्वक लड़ा, परंतु अभिमन्यु के सामने टिक नहीं सका। वह घायल होकर गिर पड़ा। कुछ देर बाद उसकी मृत्यु हो गयी। अपने पुत्र की मृत्यु से दुःशासन बावला-सा हो उठा। दुर्योधन के क्रोध की तो सीमा न रही। वह अपने अन्य योद्धाओं को ललकारता हुआ अकेले अभिमन्यु पर टूट पड़ा।

तब आचार्य द्रोण ने कर्ण से कहा, "अभिमन्यु को इस तरह नहीं हराया जा सकेगा। तुम पीछे से जाकर धनुष की डोरी काटो और मैं अन्य योद्धाओं के साथ उसके रथ के घोड़ों और सारथि को मारने का प्रयत्न करता हूँ।" कर्ण ने आचार्य द्रोण के आदेश का पालन किया। उसने फुर्ती से पीछे जाकर अभिमन्यु के धनुष की डोरी काट दी। उधर महारथियों ने बाण चला-चलाकर उसके घोड़े और सारथि को मार दिया। इतने पर भी अभिमन्यु नहीं घबराया। वह ढाल-तलवार लेकर मैदान में कूद पड़ा। बिजली की गति से तलवार घुमाता अभिमन्यु जहाँ से भी निकल जाता मैदान सूना हो जाता।

आचार्य द्रोण फिर चिंता में पड़ गये। जरा-सा बालक किसी भी तरह उनके हाथ नहीं आ रहा था। कौरवों के लिए यह लज्जा की बात थी। तभी आचार्य द्रोण ने कर्ण को बुलाकर एक चाल बतायी। उसके अनुसार दोनों महारथियों ने अभिमन्यु की तलवार और ढाल काट डाली।

तलवार टूट जाने पर अभिमन्यु क्षण भर के लिए रुक गया। लेकिन उसी

समय उसको एक विचार सूझा। उसने अपने रथ का टूटा पहिया उठा लिया। उसी से वह शत्रुओं पर घायल सिंह की तरह टूट पड़ा। कौरव सेना अभिमन्यु की इस वीरता से चकित हो गयी। निहत्था होकर भी वह बालक सबके लिए काल सिद्ध हो रहा था। कौरव सेना की हिम्मत टूटती देखकर दुःशासन के दूसरे पुत्र ने गदा सँभाली। वह अभिमन्यु की ओर लपका। उसे आता देखकर अभिमन्यु ने रथ का टूटा पहिया फेंक कर गदा उठा ली।

अब दोनों योद्धाओं में भीषण युद्ध छिड़ गया। आखिर लड़ते-लड़ते दोनों योद्धा धराशायी हो गये। फिर भी दोनों ने चटपट सँभलने की कोशिश की।

अकेला अभिमन्यु युद्ध करता थक-सा गया था। उठने में उसको पल भर की देर हो गयी। इसी एक पल का विलंब उसके लिए घातक हो गया। अवसर पाकर दुःशासन के पुत्र ने अभिमन्यु पर गदा चला दी। उसी क्षण उस वीर के प्राण-पखेरू उड़ गये।

अभिमन्यु की मृत्यु से कौरव सेना में तो आनंद की लहर दौड़ गयी। लेकिन कर्ण और द्रोण रो दिये। धृतराष्ट्र के एक पुत्र युयुत्सु से तो यह अधर्म सहा नहीं गया। उसने कहा, "तुमने यह उचित नहीं किया। तुमने एक अकेले बालक को मार कर कौन-सी बहादुरी की ? तुम्हें लज्जा आनी चाहिए। धिक्कार है तुम्हें।" यह कह कर युयुत्सु ने अपने अस्त्र-शस्त्र फेंक दिये और रण-क्षेत्र से चला गया।

अभिमन्यु की मृत्यु का समाचार सुनकर पांडवों में शोक छा गया। अर्जुन पर तो मानो वज्रपात हुआ। लेकिन अभिमन्यु मर कर भी अमर हो गया।

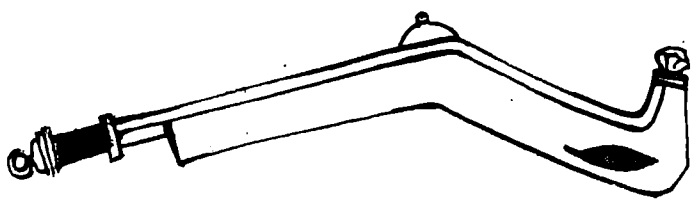

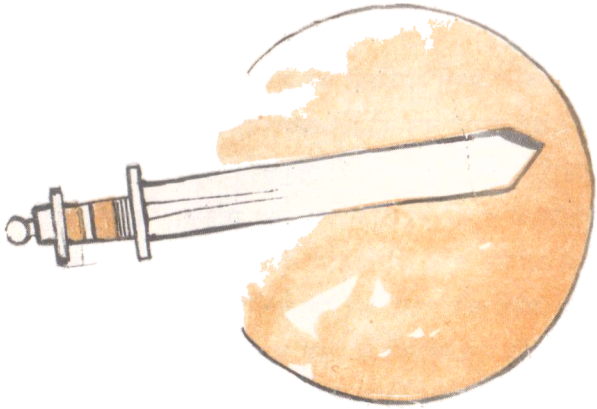

पराक्रम के सूर्य

एक हरा-भरा वन था। उसमें एक छोटी-सी कुटी थी। कुटी के सामने ही कुछ बालक खेल रहे थे। इनमें कुछ मुनिकुमार थे और कुछ वन में रहनेवाले गिरिजनों के बालक। अचानक ही सामने से धूल के उड़ते हुए बादल दिखायी दिये। बच्चों का खेल रुक गया। एक लड़के ने डरते हुए कहा, "भागो भागो, कोई सेना आ रही है।" लेकिन खेल में लगे लड़कों ने उसकी चेतावनी पर कोई ध्यान नहीं दिया। वे फिर खेल में ही मगन हो गये।

कुछ देर बाद श्याम रंग का एक सुंदर घोड़ा दौड़ता-दौड़ता उनके पास आकर रुक गया। उस घोड़े के मस्तक पर एक स्वर्ण पट्टिका थी, जिस पर लिखा था, "यह अयोध्या के चक्रवर्ती महाराज श्री रामचंद्र का अश्व है। महापराक्रमी शत्रुघ्न इस अश्व की रक्षा कर रहे हैं। जिस देश से यह अश्व निकल जायेगा, वह देश जीता हुआ समझा जायेगा। जो अयोध्या के महाराज को अपना सम्राट न मानना चाहे, वह इस अश्व को पकड़े और उसके पीछे-पीछे आ रही सेना से युद्ध करे।"

धनुष-बाण लिए एक सुंदर और तेजस्वी बालक ने स्वर्ण-पट्टी पर लिखे ये वाक्य पढ़े तो हँस पड़ा। बालक ने, जो देखने में क्षत्रियकुमार लगता था, अपना

धनुष-बाण सँभाला और अपने साथियों को ललकार कर बोला, "हम इस अश्व को नहीं जाने देंगे। यह हमारे वन को भी अयोध्या के साम्राज्य में शामिल करने आया है। पर हमारे रहते ऐसा नहीं हो सकता। बोलो, ठीक है न?" बालक का नाम लव था। उसके साथी लड़कों ने एक स्वर में कहा; "ठीक है।"

लव ने जोश में आकर घोड़े की लगाम थाम ली और उसे एक पेड़ से बाँध दिया। उसी समय घोड़े की रक्षा करनेवाले सैनिक आ पहुँचे। उन्होंने घोड़े को वृक्ष से बँधा देखा तो उसे खोलने के लिए आगे बढ़े। उन्होंने समझा कि किसी बालक ने उसे खेल-खेल में बाँध दिया है। पर वे कुछ कदम ही बढ़ पाये थे कि लव ने बाण चला कर कुछ सैनिकों को घायल कर दिया। सैनिक अचकचाकर रुक गये। वे क्रोधित होकर लव की ओर देखने लगे। उन्हें अपनी ओर घूरता हुआ पाकर लव ने बड़ी शान से कहा, "इस अश्व को मैंने बाँधा है। जो भी सैनिक उसे खोलने की चेष्टा करेगा, उसे हमसे युद्ध करना पड़ेगा।"

लव का यह उग्र रूप देखकर सैनिक घबरा गये। वे तुरंत अपने सेनानायक शत्रुघ्न के पास जा पहुँचे। उन्होंने तुरंत अपने मुख्य सेनापति कालजित को युद्ध के लिए भेजा। कालजित ने अपनी सेना को व्यूह में खड़ा किया। वह स्वयं लव से युद्ध के लिए आगे बढ़ा। पहले उसने एक बार प्यार से लव को समझाना चाहा। पर लव न माना। कालजित के पास अब सिवाय युद्ध करने के और कोई चारा न था। वह अपने सैनिकों को ललकारता हुआ आगे बढ़ा। कालजित कुछ कदम ही बढ़ने पाया था कि लव ने उस पर बाणों की बौछार कर दी। सैनिक घायल होकर भागने लगे। यह देखकर कालजित ने तलवार निकाली। उसने लव को ललकारा। लव ने मुस्करा कर एक बाण तरकश से निकाला। उसने निशाना साधकर बाण कालजित की ओर छोड़ दिया। बाण सीधे कालजित के हृदय में जाकर लगा। वह भूमि पर गिरकर तड़पने लगा। थोड़ी ही देर बाद वह मर गया।

सैनिकों ने भाग कर शत्रुघ्न को यह दुखद समाचार सुनाया। उसे सुनकर वे जितने चिंतित हुए उतने ही हैरान भी। कौन है यह अद्भुत बालक जो ऐसे बड़े-बड़े योद्धाओं के छक्के छुड़ा रहा है? ऐसा शूरवीर बालक इस वन में आया

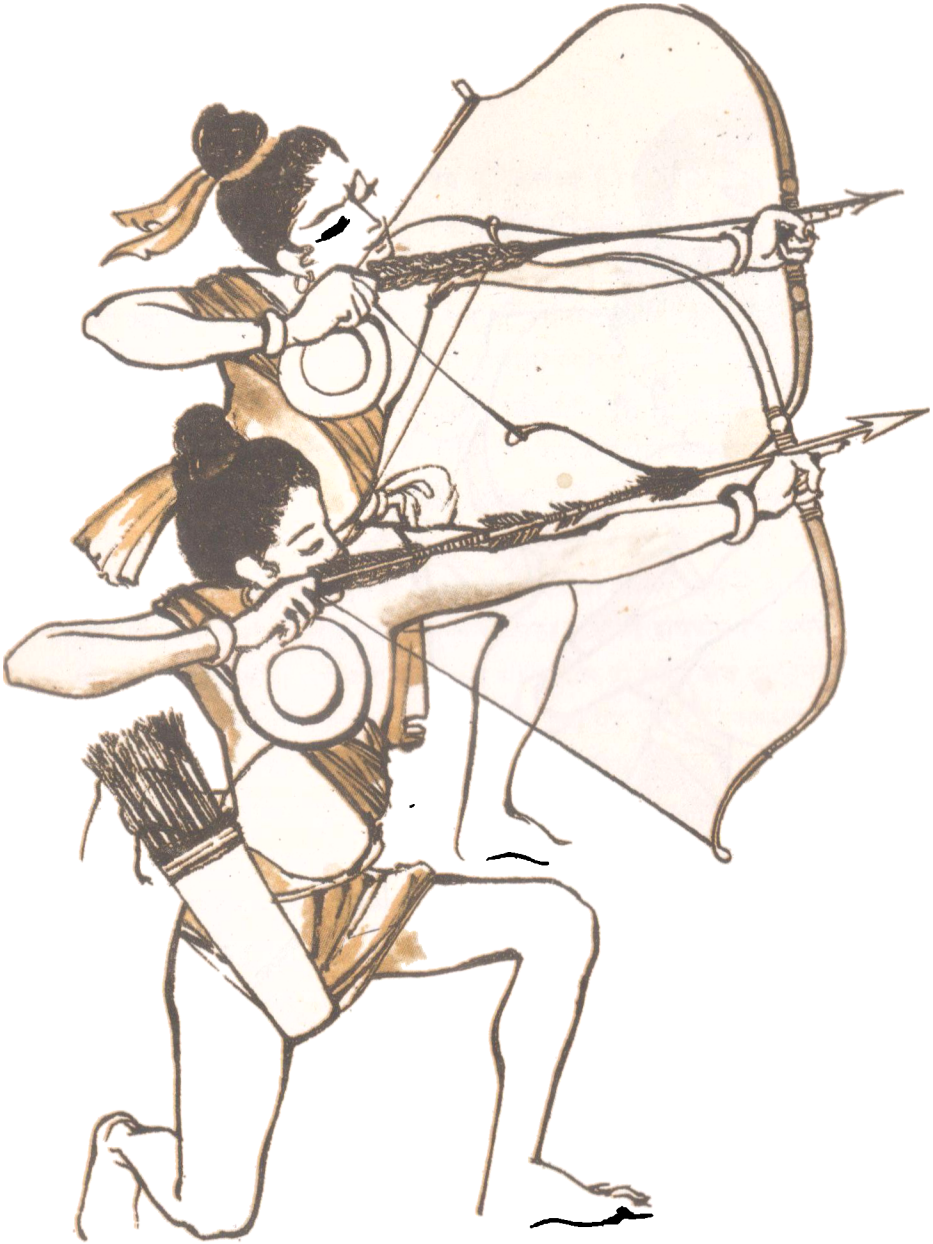

कहाँ से ? फिर वे हनुमान, अंगद, सुग्रीव आदि के साथ रण-स्थल की ओर चल पड़े।

वीर वेश में बालक लव को देखकर शत्रुघ्न दंग रह गये। उसके पराक्रम को देखकर उनका मन गद्‌गद हो उठा। पर तुरंत ही उन्हें याद हो आया कि युद्ध-भूमि में भावनाओं का कोई स्थान नहीं होता। इस समय वह बालक उनका

शत्रु था और शत्रु को हराना क्षत्रिय का कर्त्तव्य है। उन्होंने उसी समय अपने सेनापति पुष्कल को युद्ध के लिए भेजा। पुष्कल शूरवीर था। पर वह भी लव से हार गया। यह देखकर हनुमान से रहा न गया। वे भयंकर गर्जना करते हुए एक बहुत बड़े वृक्ष को उखाड़ कर लव की ओर लपके। लव तैयार था। उसने हनुमान की ओर तीर छोड़े। तीरों ने हनुमान के वृक्ष के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। यह देखकर हनुमान ने अपनी पूँछ और लंबी की। पूँछ से उन्होंने लव को लपेट लिया। इस संकट में भी लव घबराया नहीं। उसने उछल कर हनुमान की छाती पर एक मुक्का मारा। हनुमान चोट नहीं सह सके और बेहोश हो गये।

हनुमान को बेहोश देखकर शत्रुघ्न बहुत चिंतित हो उठे। उन्हें आश्चर्य था कि एक ज़रा-से लड़के में इतना रण-कौशल, इतनी शक्ति कहाँ से आयी ? उन्हें रण के लिए तैयार देखकर लव मुस्करा उठा। उसने शत्रुघ्न पर अपने बाणों की तेज़ बौछार की। क्षण भर में शत्रुघ्न भी मूर्छित हो गये। अब तो उनकी सेना में खलबली मच गयी। सारे योद्धा एक साथ लव पर टूट पड़े। लव तब भी बड़े धैर्य से सारी सेना का मुकाबला करता रहा। इसी बीच शत्रुघ्न को होश आ गया। उन्होंने राम का दिया हुआ बाण धनुष पर चढ़ा कर लव की ओर छोड़ा। बाण सीधा ही लव के हृदय में जाकर लगा। उसके लगते ही वह मूर्छित होकर गिर पड़ा। मुनियों के कुछ बालक वृक्षों पर चढ़े-चढ़े यह युद्ध देख रहे थे। उन्हें बड़ा आनंद आ रहा था। पर जब उन्होंने लव को मूर्छित देखा तो फौरन उतर कर आश्रम की ओर दौड़ पड़े।

यह आश्रम महर्षि बाल्मीकि का था। लव और कुश अपनी माँ सीता के साथ यहाँ रहते थे। उस समय सीता काम कर रही थीं। कुश कुटी के पास ही खेल रहा था। बच्चों ने

साता और कुश को सारा हाल कह सुनाया। लव के मूर्छित होने की खबर पाते ही सीता की आँखों में आँसू आ गये। यह देखकर कुश ने कहा, "माँ, आप रोइए मत। मैं अभी जाकर लव की कुशलता का समाचार लाता हूँ।" सीता के चरण छूकर कुश युद्ध-भूमि की ओर दौड़ पड़ा।

अब तक लव को होश आ गया था। उसने कुश को आते देखा तो फौरन उठ कर बैठ गया। कुश ने पहले तो लव को गले लगाया। फिर दोनों भाई अपने-अपने धनुषों पर तीर चढ़ाकर लड़ने के लिए तैयार हो गये। शत्रुघ्न ने सेना को युद्ध के लिए पूरी तरह तैयार रहने का संकेत कर दिया। अब क्या था? उतनी बड़ी सेना दोनों बालकों पर टूट पड़ी। हनुमान को भी होश आ गया था। वे एक विशाल चट्टान लेकर दोनों भाइयों की ओर बढ़े। उनके साथ-साथ अंगद भी आगे बढ़े। लव और कुश घुटने के बल बैठकर फिर बाण चलाने लगे। अंत में हनुमान और अंगद मूर्छित हो गिर पड़े। धीरे-धीरे यही हाल दूसरे योद्धाओं का भी हुआ। कुछ ही देर में दोनों भाइयों ने शत्रुघ्न की सेना के सभी वीर योद्धाओं को मार गिराया। कुश के बाणों से शत्रुघ्न भी घायल होकर मूर्छित हो गये।

सबको मूर्छित होते देख लव और कुश दोनों भाई बेहद खुश हुए। उन्होंने वृक्ष से बँधे घोड़े की ओर देखा। फिर घर की ओर लौट पड़े। तभी उन्हें ध्यान आया कि इस विजय का कोई चिह्न ज़रूर अपने साथ ले चलना चाहिए। यह सोचकर उन्होंने शत्रुघ्न के मुकुट में लगे बहुमूल्य मणि को निकाल लिया। उन्होंने हनुमान और सुग्रीव की पूँछ पकड़ ली। उन्हें घसीटते वे आश्रम पहुँचे। दो वानरों के साथ अपने पुत्रों को आता देखकर सीता को हँसी आ गयी। पास आने पर उन्होंने हनुमान और सुग्रीव को पहचान लिया तो उनकी चिंता और दुख की सीमा न रही। उन्होंने अपने पुत्रों की ताड़ना की और उन्हें बताया कि हनुमान और सुग्रीव कौन हैं। सीता यह भी समझ गयीं कि यह घोड़ा राम का है। उन्होंने लव और कुश से कहा, "बेटा, वह अश्व तो तुम्हारे पिता का ही है। जाओ, उसे जल्दी छोड़ दो।"

अपने पिता का नाम सुनकर लव और कुश प्रसन्नता से भर उठे। उन्होंने कहा: "माँ, हमने तो क्षत्रिय धर्म का पालन किया है।" सीता को कुछ उत्तर नहीं

सूझ पड़ा। वे सोच रही थीं कि राम को पता चलेगा तो वे क्या सोचेंगे ? उन्होंने अपने पुण्य-बल से रण-क्षेत्र में मृत लोगों को पुनः जीवित कर दिया। तब तक शत्रुघ्न को भी होश आ गया था। वे चुपचाप अयोध्या लौट गये। उनके साथ अश्व भी लौट आया।

उन दिनों अश्व के सकुशल लौटने के बाद यज्ञ हुआ करता था। इसे राजसूय यज्ञ कहते थे। इस यज्ञ में भाग लेने के लिए सब राजा-महाराजाओं, और ऋषि-मुनियों को निमंत्रण भेजा जाता था। महर्षि बाल्मीकि को भी निमंत्रण मिला था। वे चले तो अपने साथ लव और कुश दोनों भाइयों को भी ले गये। बाल्मीकि के आश्रम में लव और कुश दोनों रामायण पढ़ा करते थे। सारी रामायण उन्हें कंठस्थ थी। उनकी आवाज़ भी मीठी थी। दोनों भाई अयोध्या की गलियों में रामायण गाते घूमने लगे। उनके कहने का ढंग इतना आकर्षक था कि जिधर से वे गाते निकलते उधर ही सुननेवालों की भीड़ लग जाती।

एक दिन की बात है, लव और कुश राजभवन के सामने से रामायण का गान करते हुए जा रहे थे। सदा की तरह उनके पीछे भारी भीड़ थी। उनका गाना सुनकर राम मुग्ध हो उठे। उन्होंने दोनों भाइयों को बुलवाया। उनसे राजभवन में रामायण सुनी। उन्होंने दोनों बच्चों को पुरस्कार देना चाहा, परंतु उन्होंने कुछ भी लेने से इंकार कर दिया। उन्होंने कहा, "यदि आप सचमुच प्रसन्न हैं तो अपनी प्रजा के साथ हमारी रामायण सुनें। हम और कुछ नहीं चाहते।" राम ने उनकी बात मान ली। यज्ञ से समय बचा तो लव और कुश ने रामायण गाकर सुनायी। श्रोताओं की आँखों से आँसू बहने लगे।

लोग इन अद्भुत बालकों की प्रशंसा करते नहीं अघाते थे। घर-घर उन्हीं की चर्चा थी। रामायण का गान सुनकर राम का मन उदास हो गया था। उन्हें सीता की याद आने लगी। अवसर पाकर महर्षि बाल्मीकि ने असली बात बतायी। उन्होंने बताया कि जब राम ने सीता को वनवास दे दिया और लक्ष्मण उन्हें वन में छोड़ गये तो वह किस प्रकार बाल्मीकि के आश्रम में रहने लगीं। वहीं लव और कुश का जन्म हुआ।

इन दोनों बालकों की माँ देवी सीता हैं यह जानकर राम ने अपने पुत्रों को

छाती से लगा लिया। लव और कुश के सौंदर्य, पराक्रम और चतुराई पर वह पहले ही मुग्ध थे। यह जानकर कि ये तेजस्वी बालक उनके ही पुत्र हैं, राम के आनंद की सीमा नहीं थी। सीता भी अयोध्या वापस आ गयीं। अयोध्या जगमगा उठी। अयोध्यावासियों के आनंद का तो कहना ही क्या !

भरत और सिंह-शावक

पुरुवंश के राजा दुष्यंत बड़े रूपवान, गुणवान और पराक्रमी थे। देवताओं के राजा इंद्र भी संकट के समय उनकी सहायता माँगा करते थे। एक बार राजा दुष्यंत देवताओं और असुरों के युद्ध के बाद विमान में अपने राज्य को लौट रहे थे। बादल से विमान धीरे-धीरे नीचे उतर रहा था। राजा दुष्यंत मुग्ध होकर नीचे धरती की सुषमा निहार रहे थे। धीरे-धीरे विमान एक आश्रम के सामने जा रुका। मारीच ऋषि का आश्रम था। राजा रथ से उतरे। उन्होंने सोचा ऋषि के दर्शन करते चलें।

वह वन की सुंदरता देखते, धीरे-धीरे आश्रम की ओर चल रहे थे कि अचानक उनके कानों में किसी स्त्री का स्वर सुनायी दिया, "नहीं, नहीं, बेटा। सिंह-शावक को छोड़ दो। मेरी बात मानो।" राजा ने मुड़ कर देखा कि एक बहुत ही सुंदर और तेजस्वी बालक ने सिंहनी के पास से उसके बच्चे को उठा लिया है और उसका मुँह खोलने की कोशिश करते हुए कह रहा है, "खोल अपना मुँह। देखूँ तो जरा तेरे कितने दाँत हैं।"

आश्रम की दो तपस्विनियाँ बालक को रोकने की कोशिश कर रही थीं।

दुष्यंत ने बालक को देखा तो देखते ही रह गये। उनका न जाने क्यों जी करने लगा कि उसे गोद में उठा कर खूब प्यार करें। इतने में एक तपस्विनी ने बालक को फिर रोकने की कोशिश करते हुए कहा, "बेटा भरत, सिंह-शावक को नहीं छोड़ोगे तो अभी सिंहनी तुम्हारे ऊपर झपट पड़ेगी।"

भरत ने मुँह बना कर कहा, "सिंहनी से कौन डरता है।"

बालक को भय दिखाना बेकार था। तपस्विनी परेशान हो गयी। कैसे उसे

राजा ने मुस्करा कर पूछा, "पहले बताइए कि यह बालक कौन है ? देखने में तो यह किसी राजवंश का कुमार लगता है। यह ऋषि के आश्रम में कैसे आया ?"

तपस्विनी ने कहा, "आपका अनुमान ठीक है, राजन्। भरत पुरुवंश का राजकुमार है।"

पुरुवंश का नाम सुनते ही राजा दुष्यंत चौंक पड़े। उनका माथा ठनका।

तब तक पहली तपस्विनी भी मिट्टी का मोर लेकर आ गयी। उसने भरत को खिलौना देने के लिए हाथ बढ़ाया ही था कि अचानक चीख उठी। भरत की बाँह पर बँधा रक्षा-कवच नहीं था। तपस्विनी ने घबरा कर पूछा, "भरत, तुम्हारा रक्षा-कवच कहाँ है ? तुमने तो बहुत परेशान कर दिया, बेटा।"

तपस्विनियों के साथ राजा दुष्यंत भी चारों ओर रक्षा-कवच ढूँढ़ने लगे। कवच वहीं धरती पर गिरा था। राजा उसको उठाने के लिए झुके तो तपस्विनियों ने चीख कर कहा, "रहने दीजिए। इसको मत उठाइए।" लेकिन तब तक उन्होंने उसे उठा लिया था।

तपस्विनी मानो कवच की बात ही भूल गयी। आँखें फाड़-फाड़ कर दुष्यंत की ओर देखने लगी। राजा ने आश्चर्य से पूछा, "क्या हो गया ? आप इतनी हैरान क्यों हो गयीं ? लीजिए न, कवच। बाँध दीजिए भरत की बाँह पर।"

तपस्विनी की मानो चेतना लौटी। उसने तब बताया कि ऋषि मारीच ने यह रक्षा-कवच भरत की बाँह पर बाँधा था, साथ ही यह भी कहा था कि यदि कभी यह कवच गिर जाय तो केवल भरत के माता-पिता ही इसे उठायें। यदि किसी और ने हाथ लगाया तो यह साँप बन कर उसको डस लेगा।

तपस्विनी की बात सुनकर दुष्यंत समझ गये कि उनका संदेह ठीक ही था। भरत उनका पुत्र है ! उनकी आँखों में आनंद के आँसू भर आये।

अचानक भरत का मन सिंह के बच्चे से ऊब गया। उसने मचल कर कहा, "माँ के पास जाना है।"

दुष्यंत ने उसको दुलार कर कहा, "चलो बेटा, हम दोनों ही माँ के पास चलेंगे।"

भरत ने तुरंत कहा, "आप मुझको बेटा मत कहिए। मेरे पिता तो राजा दुष्यंत हैं।"

भरत के साथ-साथ आश्रम की ओर जाते हुए राजा दुष्यंत को एक-एक करके सारी बातें याद आने लगीं।

राजा दुष्यंत को वह दिन याद आ गया जब शकुंतला उनके राजदरबार में आयी थी और दुष्यंत उन्हें पहचान भी न पाये थे। पता नहीं उनकी मति को क्या हो गया था। पता नहीं कहाँ गयी होगी ! कितने कष्ट झेले होंगे बेचारी ने ! लेकिन मारीच ऋषि के आश्रम में कैसे आयी ? अपने पिता कण्व के आश्रम में क्यों नहीं चली गयी ? वह इसी सोच में डूब गये।

कण्व ऋषि के आश्रम में ही तो पहलेपहल उन्होंने शकुंतला को देखा था। शिकार खेलने गये थे। एक हिरन ने उनको खूब दौड़ाया था। उसका पीछा करते-करते वे आश्रम में जा पहुँचे। वहाँ शकुंतला को देखा जो अपनी सखियों के साथ पौधों और लताओं को सींच रही थी। इतनी सुंदर स्त्री उन्होंने कभी राजमहलों में भी नहीं देखी थी। शकुंतला को देखते ही उन्होंने उसी समय उससे विवाह करने का संकल्प कर लिया। कण्व ऋषि उस समय तीर्थ-यात्रा पर गये थे।

शकुंतला को भी राजा दुष्यंत बहुत अच्छे लगे। दोनों ने आश्रम में ही विवाह कर लिया। कुछ दिन तक तो राजा आश्रम में ही रहे। लेकिन राज-काज छोड़कर कब तक वहाँ रह सकते थे ? इधर कण्व ऋषि अभी वापस नहीं आये थे, इसलिए वे शकुंतला को अपने साथ ले जा भी नहीं सकते थे।

आखिर राजा को वापस जाना पड़ा। शकुंतला से और आश्रमवासियों से उन्होंने विदा ली। उन्होंने अपनी अँगूठी शकुंतला को दी और कहा कि वह वापस जाकर अपने मंत्री आदि को उसे लिवाने भेजेंगे। राजा चले गये।

एक दिन की बात है। शकुंतला अनमनी-सी बैठी थी कि अचानक दुर्वासा ऋषि आ पहुँचे। दुर्वासा अपने भयंकर क्रोध के लिए प्रसिद्ध थे। जरा-जरा-सी बात पर कुपित होकर शाप दे डालते थे। इसलिए लोग उनसे बहुत डरते थे। हाँ तो, वे आये तो शकुंतला को उनके आने का पता ही नहीं लगा। बस, ऋषि ने कुपित होकर शाप दे डाला, "जिसके ध्यान में डूबी हो वह तुम्हें भूल जायगा।" इतनी बड़ी बात हो गयी, लेकिन शकुंतला को फिर भी कुछ पता नहीं चला। वह उसी तरह अपने ध्यान में डूबी बैठी रही। उसकी सखी प्रियंवदा ने भयभीत

होकर ऋषि से बड़ी विनती की, क्षमा-याचना की। ऋषि ने तब कहा, "मेरा शाप तो झूठा नहीं हो सकता, लेकिन अपनी दी हुई कोई निशानी देखकर उन्हें फिर इसकी याद आ जायेगी।" यह कह कर दुर्वासा ऋषि बिदा हुए।

हुआ भी ऐसा ही। कण्व मुनि तीर्थ-यात्रा से लौट कर आये तो शकुंतला और राजा दुष्यंत के विवाह का समाचार सुना। बहुत प्रसन्न हुए, और बेटी को पति के घर भेजने की तैयारी करने लगे। विदाई के लिए शुभ मुहूर्त देखा गया।

शकुंतला को अपना आश्रम, आश्रमवासियों और पिता समान कण्व ऋषि को छोड़ते बड़ा दुख हुआ। वह अपने हाथों से लगाये पेड़-पौधों और लताओं से लिपट कर रोयी, अपने प्यारे हिरनों से विदा ली, और सबको रोता छोड़, दो ऋषिकुमारों के साथ पतिगृह के लिए रवाना हो गयी।

शकुंतला ऋषिकुमारों के साथ राजा दुष्यंत के महल पहुँची। लेकिन राजा ने उसको पहचाना तक नहीं। शकुंतला ने अपना घूँघट पलट दिया। उसके रूप से सारा भवन जगमगा उठा। लेकिन राजा ने फिर भी उसको नहीं पहचाना। शकुंतला के दुख की सीमा नहीं थी। उसने सोचा कि अपनी अँगूठी देख कर राजा को सब बातें याद आ जायेंगी। लेकिन, सर्वनाश ! अँगूठी पता नहीं कहाँ गिर गयी थी !

लज्जित और अपमानित होकर शकुंतला राजभवन से बाहर निकली। उसे क्या पता था कि दुर्वासा के शाप के कारण ही दुष्यंत उसे भूल गये। ऋषिकुमारों ने उसे कण्व के पास वापस ले जाना चाहा। लेकिन शकुंतला ने मना कर दिया। किस मुँह से पिता के पास वापस जाये ? हारकर ऋषिकुमारों ने उसे हेमकूट पर्वत पर मारीच ऋषि के आश्रम में छोड़ दिया।

शकुंतला के जाने के बाद दुष्यंत की राजधानी में एक विचित्र घटना घटी। एक मछुआ राजा की अँगूठी बाजार में बेचता हुआ पकड़ा गया। वह कहने लगा, "मैं चोर नहीं हूँ। अँगूठी एक मछली के पेट में से निकली है।" किसी ने उसका विश्वास नहीं किया। अंत में मछुआ राजा दुष्यंत के सामने लाया गया। राजा ने अँगूठी को देखते ही पहचान लिया। यह वही अँगूठी थी जो उन्होंने शकुंतला को दी थी। गंगा मैया की पूजा करते समय शकुंतला की उँगली से गिर पडी थी

और एक मछली उसे निगल गयी थी।

राजा अब रात-दिन चिंतित रहने लगे। उनके पछतावे की सीमा न थी। पता नहीं शकुंतला कहाँ होगी, जब तक उसे ढूँढ़कर, अपने अपराध की क्षमा माँगकर, आदर के साथ महल में नहीं ले आते, उन्हें चैन नहीं था।

उन्हीं दिनों असुरों और देवताओं के बीच संग्राम छिड़ गया। इंद्र ने दुष्यंत से सहायता

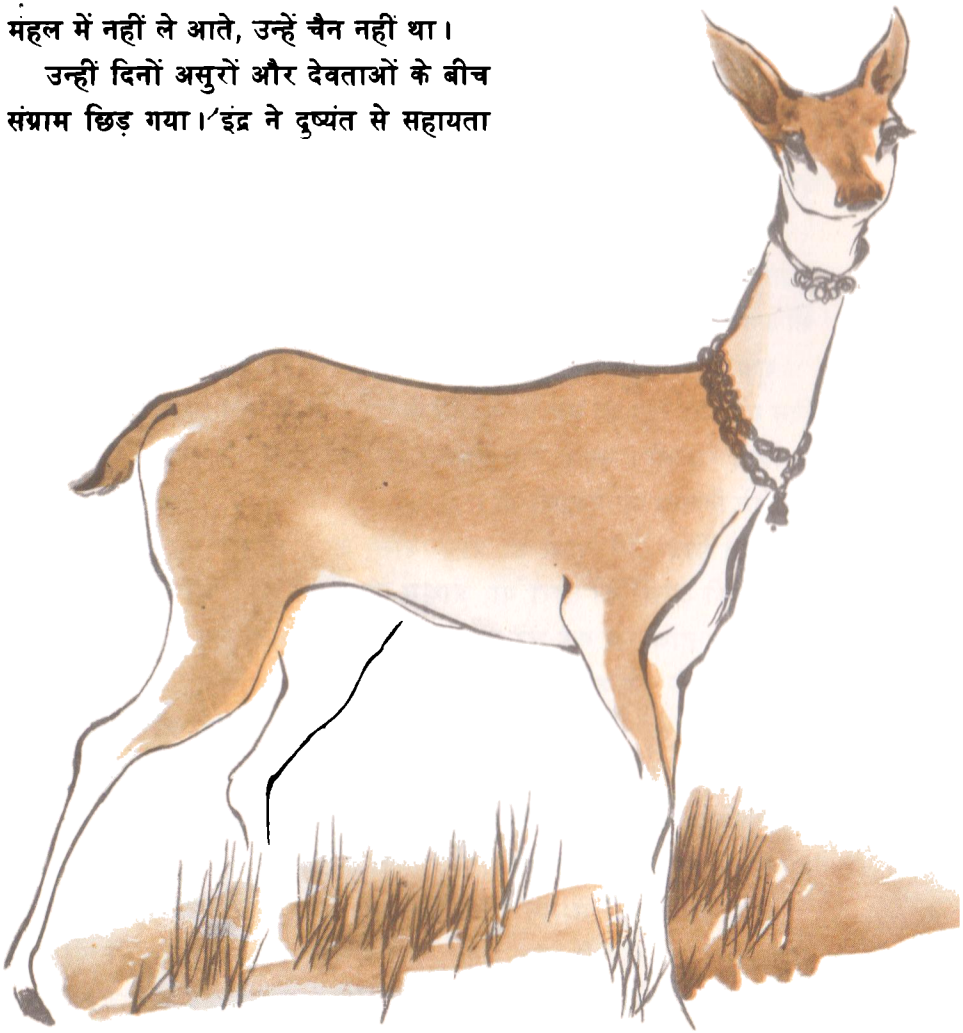

माँगी। उसी युद्ध से लौटते समय राजा हेमकूट पर्वत पर उतरे जहाँ उन्हें अपना पुत्र मिल गया।

इसी प्रकार सोचते हुए दुष्यंत भरत और तपस्विनियों के साथ आश्रम की ओर जा रहे थे।

इतने में शकुंतला भी भरत को खोजती हुई वहाँ आ पहुँची। दुष्यंत को देखते ही ठिठक कर खड़ी रह गयी। माँ और राजा की आँखों में आँसू बहते देख भरत ने पूछा, "यह कौन हैं, माँ ? यह मुझे पुत्र क्यों कहते हैं ?"

शकुंतला ने अपने को सँभाला और आँसू पोछते हुए कहा, "इन्हें प्रणाम करो, पुत्र। ये तुम्हारे पिता हैं।"

माता-पिता और पुत्र ने जाकर मारीच ऋषि को प्रणाम किया। राजा दुष्यंत ने सारा किस्सा सुनाकर शकुंतला और भरत को अपने साथ ले जाने की अनुमति माँगी।

शुभ दिन शकुंतला और भरत ने आश्रम से विदा ली। शकुंतला को वह दिन याद आ रहा था जब उसने पति के घर जाने के लिए पिता कण्व के आश्रम से विदा ली थी। उसके बाद कितनी मुसीबतें झेलीं थीं उसने। लेकिन आज का दिन कितना भाग्यशाली था।

भरत विदा लेने आया तो आश्रमवासी अपने आँसुओं को नहीं रोक सके। यह सबकी आँखों का तारा था, आश्रम की रौनक था। ऋषि मारीच ने भरत के सर पर हाथ रख कर भरे कंठ से कहा, "आज बड़ा शुभ दिन है, बेटा। तुम अपने पिता के घर जा रहे हो।"

फिर दुष्यंत से बोले, "राजन्, आपका पुत्र बड़ा प्रतापी होगा। वह दुष्यंत के पुत्र के रूप में नहीं, बल्कि आप भरत के पिता के रूप में याद किये जायेंगे। मेरी भविष्यवाणी कभी गलत नहीं होती। ईश्वर इसे चिरायु करे।"

वन के छोर तक आश्रमवासी उन्हें विदा देने आये।

उधर राजधानी में उन तीनों का बड़ी धूमधाम से स्वागत किया गया। सारे नगर को तोरणों और मंगल घटों से सजाया गया। रोशनी की गयी। नाच-गाने की धूम कई दिनों तक चलती रही। राज-भंडार के द्वार खोल दिये

गये। कोई भी खाली हाथ न जाने पाता। सारे राज्य में खुशी की लहर दौड़ गयी।

भरत के लिए नये जीवन का आरंभ हुआ। दासियों ने उसे गुलाब से सुगंधित किये जल से स्नान करवाया, राजपुत्र के योग्य रेशमी वस्त्र पहनाये। गले में बहुमूल्य मोतियों की माला पहनायी, सिर पर हीरे से जड़ा मुकुट पहनाया और कमर में तलवार लटका दी। तपस्वी बालक भरत तेजस्वी राजकुमार बन गया। उसने पहले कुलदेवता को प्रणाम किया, फिर कुलगुरु को और अंत में माता-पिता को। फिर बड़े ठाट से पिता के साथ राज-दरबार में जा बैठा। उसको देखकर कोई कह ही नहीं सकता था कि वह यह सारे काम पहली बार कर रहा है। पिता-पुत्र की उस अनुपम जोड़ी को देख प्रजा विभोर हो उठी। स्वर्ग से देवताओं ने फूल बरसाये और आशीर्वाद दिया।

कई वर्षों तक राजा दुष्यंत ने राज्य किया। उसके बाद भरत राजा हुए। सिंह-शावकों से खेलनेवाला बालक अपने पराक्रम से चक्रवर्ती सम्राट बन गया। कहते हैं कि भरत के नाम पर ही इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा।

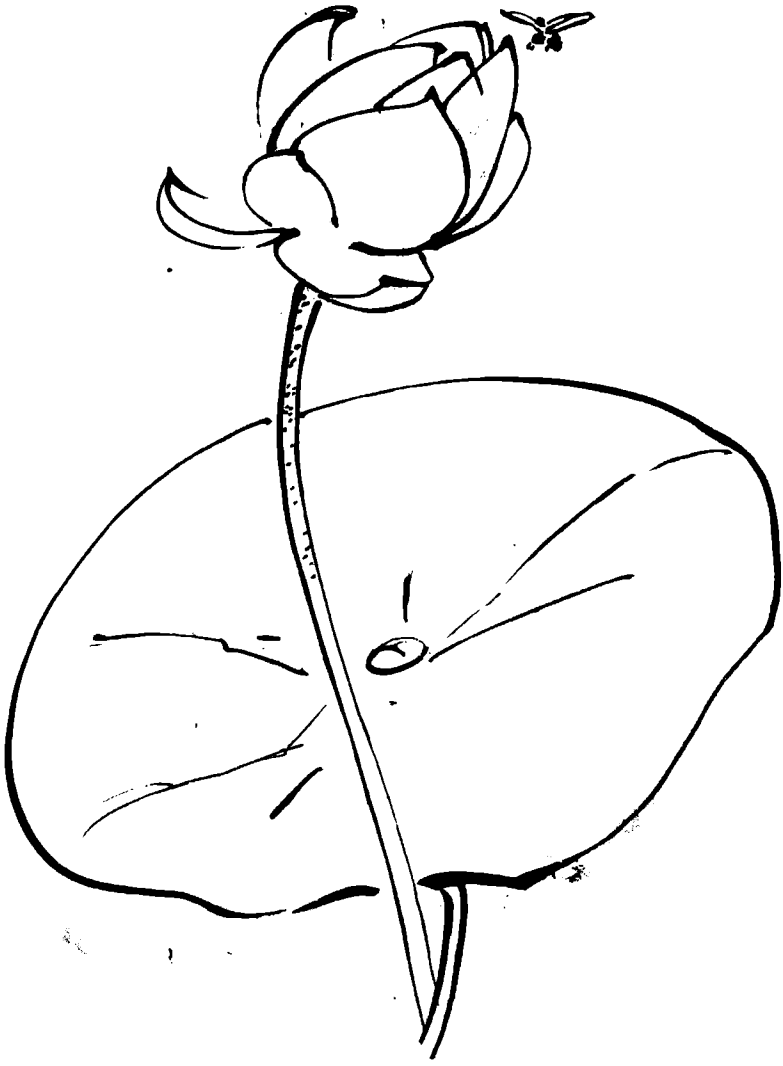

इंडिया इन्टरनेशनल प्रैस, ए-12/1 नारायणा इन्डस्ट्रीयल एरिया फेस-I, द्वारा मुद्रित

रु. 16.00 ISBN 978-81-237-0367-1

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया